**एमएएचआई – 505**

# मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

## द्वितीय सेमेस्टर

# आधुनिक उत्तराखण्ड में समाज

## अध्ययन मण्डल

**अध्यक्ष,**

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

**अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम**

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली

3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल

4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा

5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

## पाठ्यक्रम समन्वयक

## डॉ. मदन मोहन जोशी

**इकाई लेखन-** डॉ. मदन मोहन जोशी, इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी


| | |
|---|---|
| इकाई एक- | उत्तराखण्ड की सामाजिक संरचना |
| इकाई दो- | उत्तराखण्ड में विवाह, परिवार, नातेदारी और स्त्रियों की प्रस्थिति |
| इकाई तीन- | उत्तराखण्ड में सामाजिक नियन्त्रण |
| इकाई चार- | उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन और आधुनिकीकरण |
| इकाई पांच- | उत्तराखण्ड की सामाजिक समस्याऐं |
| इकाई छह- | उत्तराखण्ड का धार्मिक जीवन |
| इकाई सात- | उत्तराखण्ड:कला,साहित्य एवं संगीत |



| | |
|---|---|
| आई.एस.बी.एन. | : |
| कॉपीराइट | : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय |
| प्रकाशन वर्ष | : |
| Published by | : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139 |
| Printed at | : |


सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

# इकाई–एक : उत्तराखण्ड की सामाजिक संरचना


1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 सामाजिक संरचना : अर्थ एवं परिभाषाऐं

1.3.1 सामाजिक संरचना की विशेषताऐं

1.3.2 सामाजिक संरचना के तत्व

1.4 उत्तराखण्ड : ऐतिहासिक परिचय

1.5 उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विशेषताऐं

1.6. उत्तराखण्ड : सामाजिक स्थिति और सामाजिक संगठन

1.6.1 जनजातियाँ

1.6.1.1 भोटिया

1.6.1.2 राजी या बनरौत

1.6.1.3 थारू

1.6.1.4 बुक्सा

1.6.1.5 जौनसारी

1.7. भाषा

1.8. परिधान , खानपान एवं आर्थिक स्थिति

1.8.1 परिधान

1.8.2 खानपान

1.8.3 पशुपालन

1.8.4 उद्योग – धन्धे

1.9 सारांश

1.10 तकनीकी शब्दावली

1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.13 सहायक / उपयोगी

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 1.1 प्रस्तावना

सामाजिक संरचना की अवधारणा का उल्लेख सर्वप्रथम स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशियालॉजी में किया यद्यपि वह सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था के बीच कोई स्पष्ट अन्तर नहीं बता सके। इसके बाद दुर्खीम, रेडक्लिफ ब्राउन, मानहीम, नैडेल मर्टन, पारसन्स डेविस तथा मैकाइवर ने सामाजिक संरचना की अवधारणाओं को अधिक व्यापक रूप में स्पष्ट किया। इन विद्वानों के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत एक स्थिर प्रतिमान है जो एक विशेष सामाजिक जीवन के बाहरी स्वरूप अथवा परस्पर सम्बन्धित सामाजिक इकाइयों की क्रमबद्धता को स्पष्ट करता है। सामाजिक संरचना की अवधारणा जैविकीय संरचना की अवधारणा के प्रभाव का फल है।

जीवनशास्त्र में संरचना का अर्थ किसी सावयव का निमार्ण करने वाले विभिन्न अंगों में पाई जाने वाली अपेक्षाकृत स्थायी व्यवस्था से होता है। समाज के अनेक अंग होते हैं। एक सम्पूर्णतः की भाँति इसका निर्माण विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और संस्थाओं के व्यवस्थित संकलन से होता है। इस तरह समाज को निर्मित करने वाले विभिन्न अंग तथा इकाइयाँ व्यवस्थित ढंग से संयुक्त होकर एक ढाँचे का निर्माण करते हैं। इसे ही सामाजिक संरचना कहते है।

उत्तराखण्ड एक ऐसा क्षेत्र है जो अभी तक संस्कृति के प्राचीन शुद्ध रूप को धारण किए हुए है। पुराणों में उल्लेख है कि अनेक ऋषि मुनियों द्वारा उत्तराखण्ड में तपस्या किए जाने के कारण इस भूमि को तपोभूमि भी कहा जाता है। यहाँ की संस्कृति देश के अन्य भागों की तरह प्रभावित होती रही है।उत्तराखण्डीय समाज का विस्तार लगभग 11वीं–12वीं सदी के पश्चात हुआ। उससे पूर्व यहाँ कोल, किरात, एवं खश जैसी आदिवासी जातियों का वर्चस्व था। इन जातियों की सामाजिक संरचना सरल थी। इनमें कट्टरता भी कम थी। परन्तु 11वीं–12वीं सदी के पश्चात उत्तराखण्ड में बाहरी जातियों विशेषकर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आगमन आरम्भ हो गया जो अपने साथ जाति कट्टरता का बीज उत्तराँचल की भूमि पर बोने लगे। उत्तराखण्ड समाज में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोपरि है। अधिकांश उत्तराखण्डीय ब्राह्मण बाहर से आकर बसे हुये हैं। ब्राह्मणों के बाद उत्तर की सामाजिक स्थिति में क्षत्रियों का प्रमुख स्थान है। उत्तराखण्ड के समाज में सबसे निम्न सामाजिक स्थिति शूद्रों को प्राप्त है। शुद्रों को उत्तराखण्ड का मूल प्राचीन निवासी माना जा सकता है। कुछ इतिहासकारों ने इन्हें कोल प्रजाति माना है। उत्तराखण्ड मे मुख्य रूप से सात प्रकार की जनजातियाँ निवास करती है :भोटिया,थारू,बनरौत,राजी,जौनसारी,बुक्सा,जाड़ तथा हर की दून के खड़वाल। भारत के मानचित्र में कुमाँऊ और गढ़वाल का क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं हैं। भौगोलिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक स्थितियाँ समान रहने के कारण यहाँ की संस्कृति भी लगभग एक सी रही है।कुमाउँनी और गढ़वाली, मनुष्य आम तौर पर सरल, सहज और सादगी पूर्ण प्रकृति के होते हैं। स्पष्ट है कि सामाजिक संरचना का सम्बन्ध सामाजिक संगठनों के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् विभिन्न समूहों, समितियों तथा संस्थाओं और इन सबके संकुल से है।''

## 1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों के माध्यम से उत्तराखण्ड की सामाजिक संरचना का परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- सामाजिक संरचना : अर्थ एवं परिभाषाऐं
- सामाजिक संरचना के तत्व
- उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विशेषताऐं
- उत्तराखण्ड : सामाजिक स्थिति और सामाजिक संगठन
- उत्तराखण्ड की भाषाएं
- परिधान , खानपान एवं आर्थिक स्थिति

## 1.3 सामाजिक संरचना : अर्थ एवं परिभाषाऐं

विद्वानों ने सामाजिक संरचना की प्रकृति को निम्नांकित रूप से समझाया हैः

**कार्ल मानहीम** ने सामाजिक संरचना को परिभाषित करते हुए लिखा है *''सामाजिक संरचना परस्पर क्रिया करती हुई सामाजिक शक्तियों का जाल है जिससे अवलोकन और चिन्तन के विभिन्न तरीकों का जन्म होता है।''*

**जॉन्सन** के अनुसार, *''किसी भी वस्तु की संरचना उसके अंगों में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्तः सम्बन्धों को कहते हैं।''*

**कोजर** ने लिखा है, *''सामाजिक संरचना का तात्पर्य विभिन्न सामाजिक इकाइयों के तुलनात्मक रूप से स्थिर और प्रतिमानित सम्बन्धों से है।''*

**पारसन्स** का कथन है, *''सामाजिक संरचना का अर्थ एक दूसरे से सम्बन्धित संस्थाओं एवं ऐजेन्सियों, सामाजिक प्रतिमानों और समूहों में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा ग्रहण की जाने वाली प्रस्थिति और भूमिकाओं की क्रमबद्धता से है।''*

**रेडक्लिफ ब्राउन** के शब्दों में, *''सामाजिक संरचना का निमार्ण करने वाले अंग स्वयं मनुष्य हैं तथा सामाजिक संरचना संस्थात्मक रूप से परिभाषित और नियमित व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की ही एक क्रमबद्धता है।''*

**नैडेल** का कथन है, *''सामाजिक संरचना अनेक अंगों की एक क्रमबद्धता की ओर संकेत करती है – ये संरचना तुलनात्मक रूप से स्थिर होती है यद्यपि इसका निर्माण करने वाले अंग स्वयं में परिर्वतनशील होते हैं।''*

**गिन्सवर्ग** के अनुसार, *''सामाजिक संरचना का सम्बन्ध सामाजिक संगठनों के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् विभिन्न समूहों, समितियों तथा संस्थाओं और इन सबके संकुल से है।''*

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सामाजिक संरचना अनेक सामाजिक समूहों, समितियों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों की प्रस्थिति और भूमिकाओं को प्रभावित करने वाले नियमों तथा मूल्यों की एक क्रमबद्धता है। ये सच है कि आवश्यकता के अनुसार सामाजिक संरचना का निमार्ण करने वाले अंगों की प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है किन्तु उससे सामाजिक संरचना में सामान्य रूप से कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह स्थिति वैसी ही है जिस तरह स्वास्थ की

दशा में शरीर का कोई अंग पहले की तुलना में कुछ बदल जाने के बाद भी स्वयं शरीर की सामान्य संरचना में कोई परिवर्तन नहीं होता।

### 1.3.1 सामाजिक संरचना की विशेषताऐं

सामाजिक संरचना समाज का एक बाह्य रूप है जिसके निर्माण में बहुत से समूहों, संस्थाओं, समितियों तथा सामाजिक मूल्यों का योगदान है। इन सभी इकाइयों की प्रकृति का निर्धारण ही सामाजिक संरचना को अक्सर सांस्कृतिक संरचना भी कह दिया जाता है। सामाजिक संरचना की कुछ प्रमुख विशेषताऐं बिंदुवार अग्रांकित हैं–

- सामाजिक संरचन एक क्रमबद्धता है।
- सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
- सामाजिक संरचना की अनेक उप–संरचनाए होती है।
- सामाजिक संरचना के विभिन्न अंग परस्पर सम्बन्धित हैं।
- सामाजिक संरचना में मूल्यों का समावेश होता है।
- सामाजिक संरचना के प्रत्येक अंग के निर्धारण प्रकार्य होते हैं।
- सामाजिक संरचना अमूर्त होती है।
- सामाजिक संरचना का तात्पर्य सदैव संगठन से नहीं होता।
- सामाजिक संरचना स्थानीय आवश्यकताओं से प्रभावित होती है।

### 1.3.2 सामाजिक संरचना के तत्व

यह जानना आवश्यक है कि सामाजिक संरचना का निर्माण किन–किन तत्वों के द्वारा होता है। इस सम्बन्ध मे जॉन्सन ने पारसन्स की विवेचना के आधार पर यह बताया है कि विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों से जुड़े हुए समूह तथा इन समूहों की भूमिकाओं के आधार पर सामाजिक संरचना का निर्माण होता है। सामाजिक संरचना के तत्वों में अग्रांकित तत्वों को शामिल किया गया है–सामाजिक आकारिकी,सामाजिक शारीरिकी,

प्रस्थिति तथा भूमिका,सामाजिक संस्थाऐं,सामाजिक प्रक्रियाऐं,सामाजिक मूल्य, एवं सामाजिक अन्तक्रियाऐं।

## 1.4 उत्तराखण्ड : ऐतिहासिक परिचय

उत्तराखण्ड अपने भौगोलिक तथा सांस्कृतिक विविधताओं के कारण अपनी विशिष्ठ पहचान बनाए हुए है। स्कन्द पुराण में हिमालय के कश्मीर, जालन्धर (हिमाँचल), कूर्मांचल, गढ़वाल और नेपाल – पाँच खण्ड बताए गए है। इन खण्डों में भी कूर्मांचल और केदारखण्ड (गढ़वाल) को देवभूमि, स्वर्गभूमि और तपोभूमि के नाम से जाना गया है, और इन दोनों क्षेत्रों को मिलकर ''उत्तराखण्ड'' के नाम से जाना गया है। (धार्मिक सांस्कृतिक एवं पौराणिक दृष्टि से गढ़वाल –

कुमाँऊ अंचल को ही देवभूमि उत्तराखण्ड होने का गौरव प्राप्त हुआ है। युग–युगों से चले आए इस सम्मान वाले 'उत्तराखण्ड' की महिमा का हमें आदर करना चाहिए और इसकी महत्ता को बनाए रखने हेतु पूरा–पूरा प्रयास करना चाहिए। हरिद्वार (विष्णु क्षेत्र का द्वार), हरद्वार (शिव क्षेत्र का द्वार) से सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की पावन भूमि विष्णु और शिव की भूमि है। शक्ति की प्रतीक पार्वती (नन्दा) का तो यह क्षेत्र अपना मायका ही है।

गंगाद्वार (हरिद्वार) के अन्तर में जो पवित्र भूमि है, उसे ऋषि–मुनियों ने ''स्वर्ग भूमि'' माना है और हरिद्वार को उस स्वर्गभूमि का स्वर्गद्वार मान कर पूजा की है। कुमाँऊ और गढ़वाल के दोनों मण्डल अपनी–अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को सुरक्षित कर आगे बढ़ते रहे हैं ये दोनों मण्डल मध्य हिमालय के महत्वपूर्ण अंचल हैं जिनकी महत्ता वेद–पुराण काल से मानी जाती रही है। जलवायु तथा भौगोलिक बनावट की दृष्टि से भी दोनों अंचलों में पूर्ण समानता है। यहाँ तक कि रीति–रिवाजों में भी दोनों मण्डलों में पूर्ण समानता है परन्तु कुछ भिन्नताऐं भी जरूर हैं, खान–पान, रहन–सहन, बोली–भाषा में समानताऐं भी हैं और भिन्नताऐं भी। ज्ञात एवं उपलब्ध इतिहास के आधार पर यह बात सभी इतिहासकार मानते हैं कि उत्तराखण्ड के गढ़वाल, कुमाँऊ मण्डलों पर कत्यूरियों का राज्य था। कार्तिकेयपुर (जोशीमठ) उनकी राजधानी थी। इस कालखण्ड में गढ़वाल और कुमाँऊ अंचल एक ही राजतन्त्र के अधीन रहे। कत्यूरियों के अशक्त होने के बाद कुमाँऊ में चन्द्र वंश का राज्य स्थापित हुआ और गढ़वाल के पंवार (परमार) वंशीय राजाओं का शासन शुरू हुआ।

कत्यूरियों के शासन काल के बाद से उत्तराखण्ड के इन दोनों खण्डों में शासन व्यवस्था स्वतंत्र रूप से होने लगी। तभी से आपसी संघर्ष होना शुरू हुआ। चाहे मित्रता हो या शत्रुता–परन्तु दोनों का चोली दामन का साथ रहा। मुसलमानों के आक्रमण को भी दोनों ने अपने–अपने ढंग से झेला, गोरखा शासन के असहनीय अत्याचारों को भी गढ़वालियों और कुमाँऊनियों ने समान रूप से भोगा। कहने का तात्पर्य यह है कि युगों–युगों से गढ़वाल और कुमाँऊ ने भाइयों की तरह एक ही भौगोलिक वातावरण में रहकर एक सा जीवन जीया है। प्रारंभ में यह उत्तर प्रदेश का एक भाग रहा, लेकिन 9 नवम्बर 2000 को उत्तराखण्ड भारत का एक राज्य बन गया।

विद्वानों ने बड़ी लगन एवं परिश्रम से अन्वेषण कर उत्तराखण्ड के इतिहास को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसको हम पुरातात्विक स्त्रोत और साहित्यिक स्त्रोत में विभाजिक कर के समझ सकते हैं। उत्तराखण्ड मे अनेक स्थानों में बड़ी मात्रा में मानव कंकाल समाधियाँ, शवाधान, गुफाऐं, शैलाश्रय चित्र, अभिलेख, एवं मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जो हमारे प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति पर व्यापक प्रकाश डालती हैं। उत्तराखण्ड का इतिहास जानने में सर्वधिक प्रमाणिक एवं विस्तृत सूचना प्रदान करने में यहाँ विभिन्न स्थानों से विभिन्न राजवंशों के काल में उत्कीर्ण शिला एवं ताम्र अभिलेख हैं। यहाँ से प्राप्त अभिलेख ई0 पू0 द्वितीय–तृतीय शताब्दी से 14वीं – 15वीं शताब्दी के मध्य के हैं। ये अभिलेख संस्कृत एवं प्राकृत में उत्कीर्ण हैं, इनमें से अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में है, इन अभिलेखों से राजवंशों की वंशावली के साथ–साथ समकालीन राजनैतिक–प्रशासनिक स्थिति का भी ज्ञान प्राप्त होता है। अल्मोड़ा, बागेश्वर, चम्पावत,

उत्तरकाशी, केदारनाथ, गोपेश्वर, द्रोणगिरि, माणा, देवप्रयाग, अम्बरीगाँव, पलेठा इत्यादि स्थानों से अभिलेख प्राप्त हुए हैं। उत्तराखण्ड से प्राप्त मुद्रायें कुणिन्द एवं यौधेय वंश से सम्बन्धित हैं।

स्कन्दपुराण जैसे हिन्दू धर्म ग्रंथों में उत्तराखण्ड से सम्बन्धित अत्यधिक मात्रा में सूचनाऐं प्राप्त होती हैं। इनके अतिरिक्त ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ, ब्राह्मण, छान्दोग्य एवं वृहदारण्यक उपनिषद, शिव, पदम, मत्स्य, विष्णु पुराणों से भी अनेक सूचनाऐं प्राप्त होती हैं। धार्मिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्रन्थ भी हैं जो उत्तराखण्ड के इतिहास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनाऐं प्रदान करते हैं। ये ग्रन्थ लोक साहित्य, जीवन चरित्र, विदेशी विद्वानों एवं यात्रियों के यात्रा विवरण के रूप में हैं।

## 1.5 उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विशेषताऐं

हिमालय भारतीय संस्कृति का ही नहीं अपितु आदिम मानव की संस्कृति का प्रसार केन्द्र रहा है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशेष संस्कृति होती है, जो वहाँ के मनुष्यों के लिए विशेष महत्व रखती है। उत्तराखण्ड एक ऐसा क्षेत्र है जो अभी तक संस्कृति के प्राचीन शुद्ध रूप को धारण किए हुए है। वैदिक कालीन परम्पराओं के अनुसार इस क्षेत्र में पशुधन भी परिवार का मुख्य अंग है। अनेक वैदिक मंत्र उत्तराखण्ड के लोकजीवन में हजारों वर्ष बाद भी उसी रूप में उच्चारित होते है। ऋग्वेद मे अग्नि आह्वान को यहाँ के मंगल गीत में इस प्रकार गाया जाता है–

**'ऐजा अगनी! मेरा मातुलोक,**
**त्वे बिना अगनी ब्रह्मा भूको रैगे।**
**कनकैक औलो तै मातुलोक**
**तै मातु लोक छोन्द अत्याचार**

हे मेघ मण्डल में निवास करने वाली अग्नि तुम भूमि पर उतरो, तुम्हारे अभाव में ब्रह्मा भी भूखा रह जाएगा। किन्तु धरती उत्तर देती है कि मै धरती पर कैसे उतरूँ? वहाँ तो अनेक अत्याचार होते हैं। वेदों, वैदिक साहित्य और पुराणों तथा महाभारत एवं रामायण आदि ग्रंथों में सर्वत्र आर्यों के इस आदि देश की भूरि–भूरि प्रशस्ति की गयी है। यही कारण है कि प्रायः सभी प्रसिद्ध ऋषियों ने इस भूमि को सेवित किया तथा विभिन्न मठों, तीर्थों, स्मारकों और आश्रमों के रूप में उनके नाम से वे स्थान आज भी है। अतः स्पष्ट है कि उत्तराखण्ड का यह क्षेत्र आर्य संस्कृति का केन्द्र रहा है। पुराणों में उल्लेख है कि अनेक ऋषि–मुनियों द्वारा उत्तराखण्ड में तपस्या किए जाने के कारण इस भूमि को तपोभूमि भी कहा जाता है। यहाँ की संस्कृति देश के अन्य भागों की तरह प्रभावित होती रही है। इस गंगापथ के अध्यात्म व रम्य आकर्षण ने किसी भी युग में इस सांस्कृतिक प्रवाह को स्थिर रहने नहीं दिया। तीर्थ–यात्रियों की अजेय प्राणधारा भी अवाध गति से दौड़ती रही है। इनमें से अनेक धर्म और जाति के लोग स्थायी रूप से यहीं बस गए। इस संस्कृति की आधारशिला, देवभूमि उत्तराखण्ड के तीर्थस्थलों, गंगा के पावन तट तथा हिमालय की गुफाओं मे रखी गई। उत्तराखण्ड की संस्कृति का अर्थ भारतीय संस्कृति ही है। यहाँ की ऐतिहासिक परम्परा में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने भारत की सभी संस्कृतियों का समन्वय किया है। उत्तराखण्ड की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन, व्यापक और समृद्ध है। इसको समृद्ध बनाने में जहाँ एक ओर वैदिक ऋषियों का योगदान रहा है, वहीं अनेक सिद्धों, नाथों, धर्मों तथा सम्प्रदायों का

समन्वयात्मक गुण भी निहित है। उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विशेषताओं को हम निम्नलिखित विवेचना से समझ सकते है:

## 1.6.0 उत्तराखण्ड : सामाजिक स्थिति और सामाजिक संगठन

उत्तराखण्डीय समाज का विस्तार लगभग 11वीं–12वीं सदी के पश्चात हुआ। उससे पूर्व यहाँ कोल, किरात, एवं खश जैसी आदिवासी जातियों का वर्चस्व था। इन जातियों की सामाजिक संरचना सरल थी। इनमें कट्टरता भी कम थी। परन्तु 11 वीं–12वीं सदी के पश्चात उत्तराखण्ड में बाहरी जातियों विशेषकर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का आगमन आरम्भ हो गया। जो अपने साथ जातीय कट्टरता का बीज उत्तराँचल की भूमि पर बोने लगे। चंद वंश एवं पंवार वंश के शासकों ने इन नवागंतुक जातियों को प्रश्रय देने में कोई कंजूसी नहीं दिखायी। ये दोनों वंश भी स्थानीय वंश के शासकों का अंत कर अपना शासन स्थापित करने में सफल हुये थे। बाहर से आकर बसी जातियों में जातीय श्रेष्ठता की भावना पहले ही से विद्यमान थी। यहाँ आकर इसमें और अधिक वृद्धि हुयी। स्थानीय जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये यह जातीय भेद उन्हें आवश्यक जान पड़ा। स्थानीय जातियाँ सरल एवं शान्तिप्रय थीं साथ ही वाह्य नवागंतुक जातियाँ स्थानीय जातियों से कुछ शिक्षित एवं सभ्य अवश्य थीं। वर्तमान में अनेक स्थानीय जातियों व नवागंतुक जातियों में आचार–व्यवहार में समानता को देखते हुये उनके बीच भेद कर पाना कठिन है। नई जातियों का आवागमन 18वीं–19वीं सदी तक निरन्तर बना रहा। उत्तराँचल में बाहर से आयी जातियों ने स्थानीय जातियों की अपेक्षा अधिक विकास किया। उनकी आर्थिक स्थिति स्थानीय जातियों से अच्छी रही है। वर्तमान उत्तराखण्ड के समाज में जातीय भेद भाव पूर्व काल की अपेक्षा कम है परन्तु है अवश्य।

उत्तराखण्ड समाज में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोपरि है। अधिकांश उत्तराखण्डीय ब्राह्मण बाहर से आकर बसे हुये हैं। ब्राह्मणों को उत्तराँचल के सभी वंशों के शासकों ने संरक्षण दिया। विशेषकर चंद एवं पंवार शासकों ने उन्हें जीविकोपार्जन हेतु अग्रहार भूमि भी दान दी। अनेक ब्राह्मणों ने राजपुरोहित, सैन्य अधिकारी तथा ज्योतिषी के रूप में ख्याति प्राप्त की। राजाओं द्वारा अपने अनेक महत्वपूर्ण अधिकारियों एवं कर्मचारियों के पद भी ब्राह्मणों में से निश्चित किये थे। बाहर से आने वाले ब्राह्मणों ने उत्तराँचल में अपने जीविकोपार्जन हेतु कृषि एवं पशुपालन को भी अपनाया। जिन ब्राह्मणों को राजाओं द्वारा राजदरबार में स्थान दिया गया तथा जिन्होंने समृद्धि प्राप्त कर ली, उन्होंने व उनके वंशजों ने अपना एक अलग वर्ग बना लिया तथा अपने को अन्य ब्राह्मणों से श्रेष्ठ समझने लगे। ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह तो ब्राह्मणो का ब्राह्मण परिवार में ही होता है साथ ही खान–पान के मामले में वे केवल ब्राह्मण के हाथ से बने भोजन को ही ग्रहण करते हैं। उत्तराखण्ड में ब्राह्मण अन्य जातियों या वर्गो से समृद्ध एवं विकसित हैं उनमें शिक्षा का प्रचार–प्रसार भी अन्यों की अपेक्षा अधिक है। कृषि पशुपालन के अतिरिक्त वर्तमान उत्तराँचल के ब्राह्मण, व्यापार, राजनीति, सेना, प्रशासन आदि सभी क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता बनाये हुये हैं।

ब्राह्मणों के बाद उत्तराखण्ड की सामाजिक स्थिति में क्षत्रियों का प्रमुख स्थान है। प्रारम्भिक क्षत्रिय जातियाँ युद्धजीवीं थीं परन्तु युद्धों की कमी के कारण या समाप्ति के कारण क्षत्रियों ने कृषि एवं पशुपालन को अपना प्रमुख

व्यवसाय बना लिया। उत्तराँचल के क्षत्रिय दो प्रकार के हैं – राजपूत एवं खशिया। राजपूत क्षत्रिय वे हैं जो उत्तराँचल में बाहर से आये थे उन्हें राजाओं ने उच्च सैनिक पदों पर आसीन किया तथा जागीरे दी। खशिया क्षत्रिय उत्तराँचल में पूर्वकाल से ही निवास करते आये हैं। इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन करना था। ये खायकर तथा सिरतान के रूप में या थोकदार के रूप में कृषि कार्य करते थे। खशिया क्षत्रियों ने अपने सम्पूर्ण क्रियाकलाप राजपूतों के समान बना लिये तथा वे भी अपने को राजपूत कहने लगे। वर्तमान में दोनों मिश्रित हो चुके हैं।

उत्तराखण्ड के समाज में सबसे निन्म सामाजिक स्थिति शूद्रों को प्राप्त है। शूद्रों को उत्तराखण्ड का मूल निवासी माना जा सकता है। कुछ इतिहासकारों ने इन्हें कोल प्रजाति माना है। प्रारम्भ में उत्तराँचल में कोलों का ही साम्राज्य था। परन्तु बाद में किरात एवं खशों ने कोलों को पराजित कर अपना दास बनाया। उत्तराँचल में निवास करने वाले शूद्र भी अनेक उपजातियों में विभाजित हैं। यथा, टमटा, ओड़(मिस्त्री), लोहार, पहरी, आगरी, चमार, मोची, हनकिया(कुम्हार) बादी, हुड़किया दर्जी, ढोली, भौड़, हलिया इत्यादि जो कि स्वयं आपस में भेद–भाव रखते हैं। शिक्षा, सेवा तथा राजनीति में विशेष प्रोत्साहन मिलने से इनकी स्थिति में अच्छा सुधार हुआ है। शहरी क्षेत्रों में खान–पान सम्बन्धी भेदीभाव कम ही है। परन्तु ग्रामीण उत्तरांचल में शूद्रों की स्थिति में अभी सुधार होना बाकी है। ग्रामीण शूद्र आज भी पुरातन जजमानी प्रथा के अनुसार जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वे उच्च जातियों को स्पर्श नहीं कर सकते, उनके मंदिरों एवं नौलों से जल का उपयोग नहीं कर सकते।

### 1.6.1 जनजातियाँ

आधुनिकता की दृष्टि से असंस्कृत माने जाने वाले तथा आदिम और प्राचीन मानव सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले, जंगलों–पहाड़ों व पठारों के निवासी ,मानव समुदाय को आदिवासी या जनजाति कहा जाता है। उत्तराखण्ड मे मुख्य रूप से सात प्रकार की जनजातियाँ निवास करती है–

1–भोटिया

2–थारू

3–बनरौत या राजी

4–जौनसारी

5–बोक्सा / बुक्सा

6–जाड़

7–हर की दून के खड़वाल

#### 1.6.1.1 भोटिया

अधिकांश इतिहासकारों ने भोटिया जाति को तिब्बत से सम्बद्ध माना है, अर्थात् भोट में रहने वाले लोग भोटिया कहलाए गए। इनमें कुछ लोग तो वास्तव में शक या मुगल जाति के है, पर कुछ लोग आर्य या खस–जाति के वहाँ जाकर बसे, और उन्हीं में मिल गए। इनके रहन–सहन, खान–पान इत्यादि पर भारत के उत्तराखण्ड तथा तिब्बती जीवन

पद्धति एवं लोक विश्वासों का अदभुत सम्मिश्रण दिखाई देता है। जोहार के शौकाओं के अधिकांश रीति–रिवाज कुमाँऊ के खश राजपूतों की सांस्कृतिक परम्पराओं से मेल खाते हैं, जबकि दारमा के निवासियों की सांस्कृतिक संरचना एकदम भिन्न है, साथ ही जोहार के शौकाओं और दारमा के भोटियों का मूल उदगम भी एक नहीं है, लेकिन ये हिन्दू धर्म के प्रति आस्थावान हैं, हिन्दू देव – देवियों पर विश्वास करते और उनकी पूजा इत्यादि करते है, 'गावल' तथा 'बंग रंग चिम' आदि इनके लोक देवता होते हैं। भोटिया समाज में स्त्रियों को समानता का दर्जा मिलता है। पिथौ़रागढ़ जिले के जौहार तथा दारमा, चमोली जिले के तल्ला तथा मल्ला पिनखण्डा, एवं उत्तरकाशी जिले के भटवाड़ी क्षेत्र में बसी हुई भोटान्तिक जाति की संस्कृति पर आज भी किन्नर, किरात, शक, यवन, तिब्बती तथा बौद्ध आदि संस्कृतियों के कोई न कोई चिन्ह देखे जा सकते हैं।

### 1.6.1.2 राजी या बनरौत

पिथौरागढ़ जिले के अस्कोट के आसपास के जंगलों में रहने वाली राजी जाति को किरातों का वंशज माना जाता है। राजी लोग स्वयं को अस्कोट के रजवार के बड़े भाई के वंशज बताते हुए कहते हैं कि प्राचीन समय में अस्कोट के राजी के बडे बेटे को जंगल का राज मिला इसलिए उसका वंशज बनरौत कहलाया, भलैनाथ, छुरमुल, मलिकार्जुन सैम आदि इनके इष्ट देवता हैं। इनकी अपनी विशिष्ट बोली है। मछली तथा जंगली पशु–पक्षियों का मांस तथा कन्दमूल, फल आदि इनकी मुख्य खुराक हैं। बनरौत जनजाति के सर्वांगीण विकास को ध्यान में रखकर शासन द्वारा इसे राजी जनजाति के नाम पर सर्वप्रथम 1965 में आदिम जनजाति का दर्जा दिया गया और फिर लगभग 1967 में इसे उत्तर प्रदेश के चार अन्य जनजातिय समूहों के साथ अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया। वे आज आंशिक रूप से कृषक हैं लेकिन फिर भी आदिम अर्थव्यवस्था से जुड़े हैं।

### 1.6.1.3 थारू

एटकिन्सन ने लिखा है ''कोसी नदी के पूर्व में कुमाँऊ पहाड़ियों की तलहटी से लगे भू–प्रदेश में एक जनजाति जो थारू नाम से जानी जाती है के हमें दर्शन होते हैं, यह सुदुर पूर्व में बागमती नदी के तटीय क्षेत्र तक देखी जाती है। ये दलदल अर्थात् तराई क्षेत्र के निवासी हैं और धान की खेती करने वाले कृषक हैं, मलेरिया से इन पर कोई असर नहीं होता।'' जनगणना प्रतिवेदन (1867) में थारू शब्द की उत्पत्ति ''तरूवा'' शब्द से मानी गयी है, जिसका अर्थ ''भीगना'' होता है, जो थारू के निवास स्थान अर्थात् तराई क्षेत्र में होने वाली अत्यधिक वर्षा की प्रवृत्ति के लिए प्रयुक्त किया है। नेसफील्ड ने थारू शब्द ''थार'' शब्द से माना है जिसका अर्थ ''जंगलवासी'' होता है। विद्वानों के विचार एक मत नहीं हैं लेकिन यह कहा जा सकता है कि थारूओं की राजपूत उत्पति अधिक प्रमाणित प्रतीत होगी है। थारू कला प्रेमी होते है और इनके परिवारों में स्त्रियाँ अधिक प्रभावशाली होती हैं। इनके मनोरंजन का मुख्य साधन संगीत व नृत्य हैं झुगड़ा, जनीव लहचारी इनके प्रमुख नृत्यगीत हैं। वर्तमान में शिक्षा का प्रभाव इन पर पड़ रहा है और इसी कारण कुछ परिर्वतन आए हैं।

### 1.6.1.4 बुक्सा

बुक्सा जनजाति नैनीताल, उधमसिंह नगर, पौड़ी एवं देहरादून के क्षेत्रों मे पायी जाती है। जनसंख्या की दृष्टि से थारू और शौकाओं के बाद तीसरा स्थान बोक्साओं का है। ये स्वयं को धारानगर के पवार वंशी राजपूतों के वंशज मानते है। इनकी शारीरिक बनावट थारू जनजाति से मिलती जुलती है। परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं लेकिन स्त्रियों का स्थान ऊँचा होता है। विवाह पद्धति हिन्दू–पद्धति से प्रभावित है। इस समाज में साली–विवाह, भाभी–विवाह तथा बैठाड़–विवाह और तलाक सर्व स्वीकृत माने जाते हैं। छोटे–बडे झगड़ों को निपटाने के लिए इनकी अपनी पंचायत होती है। ये राम, कृष्ण, शिव, गणेश, दुर्गा, काली तथा बाला सुन्दरी आदि हिन्दू देवी–देवताओं की पूजा करते हैं और उल्का, मनसा, शीतला, ग्राम देवता, वन देवता, कुल देवता, पीर और प्रधान आदि लोक–देवताओं को भी पूजते हैं।

### 1.6.1.5 जौनसारी

यह जनजाति पश्चिमी उत्तराखण्ड के कालसी, चकराता, लाखामण्डल, जौनसार–भाबर, जौनपुर (टिहरी) इत्यादि क्षेत्रों के पहाडियों में निवास करती हैं। ये जादू –टोने, तन्त्र –मन्त्र पर विश्वास करते हैं। 'हनोल' नामक तीर्थ में 'महासू' देवता की पूजा की जाती है। वही इनका प्रमुख देवता है। स्त्रियों का स्थान काफी सम्मानपूर्ण होता है और पुत्री जन्म को शुभ माना जाता है। ये पाण्डवों को अपना पूर्वज तथा प्रमुख देवता मानते हैं।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. उत्तराखण्ड की सामाजिक स्थिति का उल्लेख करें।
2. उत्तराखण्ड की मुख्य जनजातियों के बारे में लिखें।

## 1.7.0 भाषा

भाषा वैज्ञानिकों ने पश्चिमी हिन्दी की उप–बोलियों के वर्गीकरण में कुमाँऊनी और गढ़वाली को मध्य पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत माना है। सर्वप्रथम जॉर्ज ग्रियर्सन ने यह वर्गीकरण किया था।यह वर्गीकरण मुख्यतः भौगोलिक आधार पर किया गया था। कुमाँऊनी और गढ़वाली के अपने अनेक उपभेद हैं। गढ़वाली के सन्दर्भ में रतूड़ी (1928) ने लिखा है कि '' समस्त गढ़वाल में एक ही प्रकार की भाषा नहीं बोली जाती है, प्रत्येक प्रान्त की भाषा में आपस में अनेक शब्दों में भेद है, यद्यपि प्रत्येक प्रान्त के लोग एक–दूसरे की भाषा समझ लेते हैं परन्तु एक दूसरे की भाषा बोल नहीं सकते। नगर कस्बों में जो भाषा बोली जाती है उसको सभी समझ लेते हैं। कुमाँऊनी भाषा और गढ़वाली भाषा में इतना अन्तर नहीं है कि एक दूसरे की बातचीत एक दूसरा न समझ सकें, ''रूवाली (1982) के अनुसार कुमाँऊनी की ही कम से कम निम्न उपबोलियाँ है : खस–पुर्जिया, चौगर्खिया, गंगोई, दन पुरिया, पछाई, रौचौबेंसी, कुमाई, सोर्याली, सीर्याली तथा अस्कोटी, गढ़वाली के ग्रियर्सन ने आठ भेद किये थे। परन्तु बहुगुणा ने उच्चारण के आधार पर इसके छः भेद किये हैं, जिनको नौटियाल ने भी अधिक व्यवस्थित माना है : बधाणी, सलाणी, जौनसारी, खाल्टी, वजारी, श्रीनगरी, टिहरियाली तथा रागसी। गढ़वाली और कुमाँऊनी में हिन्दी की सभी ध्वनियों के साथ कुछ अपनी ध्वनियाँ भी हैं, जैसे – अ, आ, ए, ऐ, औ, ल तथा ड़ आदि वर्णो की एक से अधिक ध्वनियाँ पाई गई हैं।

## 1.8.0 परिधान , खानपान एवं आर्थिक स्थिति

उत्तराखण्ड में परिधान , खानपान एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी निम्नलिखित बिन्दुओं के अध्ययन से प्राप्त की जा सकती है–

### 1.8.1 परिधान

इस पूरे क्षेत्र में स्थान तथा जाति के अनुसार वेश–भूषा भी भिम्न–भिन्न रही है। प्राचीन काल से यहाँ पर ऊन के चादरनुमा कपड़े को शरीर में लपेट कर गाँठ देकर पहना जाने वाला 'गाता' आदि अभी भी सीमान्त क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। पुरूष  भी नीचे ऊनी पैजामा और ऊपर लम्बा कोटनुमा वस्त्र पहनते रहे हैं। मध्यकाल से स्त्रियाँ सिला हुआ घाघरा, कुर्ता और वास्कट पहन कर एक कपड़ा सिर पर बाँधती थीं। पुरूष चूड़ीदार पैजामा, धोती और अचकन पहनते थे। फिर सादा–कुर्ता पैजामा या धोती और टोपी पहनी जाने लगी। अभी भी अनेक बुजुर्ग यही पोशाक पहनते हैं। नई पीढ़ियाँ पैंट, कमीज, कोट पहनती हैं। टोपी, पगड़ी की प्रथा समाप्त प्रायः हो चुकी है। अधिकांश स्त्रियाँ साड़ी, लड़कियाँ सलवार ,कमीज–फ्रौक आदि पहनती हैं। अब पोशाक के आधार पर जाति की पहचान नहीं हो सकती। आभूषण–प्रेमी स्त्रियाँ प्राचीनकाल से ही मूंगा, मोती तथा अनेक प्रकार के रंग–बिरंगे पत्थरों की मालाएँ, चांदी की बड़ी–बड़ी जंजीरें, बालियाँ, गलोबन्द, हंसुली, रूपयों के सिक्कों की माला, धागुले, पहौंची, पावों में बजने वाले झाँवर, पायल आदि पहनती थीं। उनमें सुहाग के लिए गले में काले बारीक मोतियों की 'चरेऊ' माला पहनना आज भी अनिवार्य माना जाता है। कान में ऊपर नीचे अनेक बालियाँ पहनी जाती थीं। नाक में सोने की छोटी बड़ी कील, नथ, बुल्ला, बुलाँक आदि पहनी जाती हैं। ये आभूषण यहीं पर बनाये जाते थे। आजकल ये चीजें बाहर से बनकर भी आती हैं और बाहर के नमूने तथा तकनीकें  लेकर यहाँ भी बनाई जाती हैं। सूती, टेरीन तथा नाइलॉन आदि के सिले हुए वस्त्र भी बाहर से आते हैं। आज अधिकांश वस्त्राभूषणों में एकरूपता दृष्टिगोचर होती हैं।

### 1.8.2 खानपान

ग्रामीण समाज में खान–पान के मामले में काफी भेदभाव रहा है। ब्राह्मणों का बनाया हुआ भोजन सभी खा लेते हैं, परन्तु अन्य जातियों का स्पर्श किया हुआ भोजन ब्राह्मण नहीं खाते। ब्राह्मणों में भी भोजन के सन्दर्भ में स्पृश्य–अस्पृश्य के अनेक भेद हैं। सवर्ण शूद्रों का स्पर्श किया हुआ नहीं खाते। अछूतों को छूने पर गोमूत्र या जल के छींटे डालकर शुद्धिकरण किया जाता था। इस तरह के रिवाज मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक विद्यमान रहे हैं। शहरी और शिक्षित लोगों में यह भेदभाव धीरे–धीरे कम होता जा रहा है। शीत प्रदेश होने के कारण इस पूरे क्षेत्र में प्राचीन काल से ही मांस भक्षण की प्रथा रही है। पशुओं की खाल पहनना, बिछाना, ऊन के वस्त्र पहनना–ओढ़ना और मांस खाना इत्यादि प्राचीन कालीन प्रथा जनजातियों में अभी भी दिखायी देती है। मध्यकाल मे आये वैष्णव ब्राह्मण तथा आधुनिक काल के आर्यसमाजी मांस भक्षण नहीं करते। इनमें प्याज–लहसुन भी वर्जित है। यहाँ गोवध और गोमांस का सेवन पाप समझा जाता है।उत्तराखण्ड के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। प्राचीन काल से ही कृषि एवं पशुपालन का यहाँ सर्वाधिक महत्व रहा है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि की दुर्दशा के लिये अनेक कारण

सम्मिलित हैं। यहाँ अति छोटी–छोटी जोते हैं, सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहीं है, कृषक रासायनिक खाद का न के बराबर प्रयोग करते हैं। नये बीज, प्रौद्योगिकी को अब अपनाया जाने लगा है।

### 1.8.3 पशुपालन

उत्तराखण्ड के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन है। प्राचीन काल से ही कृषि एवं पशुपालन का यहाँ सर्वाधिक महत्व रहा है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि की दुर्दशा के लिये अनेक कारण सम्मिलित हैं। यहाँ अति छोटी–छोटी जोते हैं, सिंचाई की पर्याप्त सुविधा नहीं है, कृषक रासायनिक खाद का न के बराबर प्रयोग करते हैं।यहाँ कृषकों द्वारा अधिकतर दुधारू पशु ही पाले जाते हैं। जिनमें गाय–भैंस प्रमुख हैं। इन दुधारू पशुओं की नस्ल उच्च कोटि की नहीं होती है। यहाँ की पालतू गायें बहुत कम मात्रा मे दूध देती हैं। यद्यपि तराई क्षेत्र में अच्छी नस्ल के दुधारू पशु पाले जाते हैं तथा वे अपने पालकों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने में सक्षम भी हैं। दुधारू पशुओं के अतिरिक्त भेड़–बकरियाँ, घोडे, खच्चर इत्यादि पशुओं को भी पाला जाता है। भेड़–बकरियाँ ऊन एवं माँस के लिये प्रयुक्त होती हैं। जबकि घोड़े एवं खच्चर सामान ढोने के लिये ।

### 1.8.4 उद्योग – धन्धे

उत्तराखण्ड में वर्तमान में अग्रांकित उद्योग–धंधे ,फल–फूल रहे हैं–

- ऊन उद्योग।
- जल–विद्युत उद्योग।
- पर्यटन उद्योग, फल एवं सब्जी उद्योग।
- खनिज उद्योग।
- रेजिन उद्योग।
- चाय उद्योग।
- जड़ी–बूटी उद्योग।
- बर्तन उद्योग।
- काष्ठ–कला उद्योग।
- चीनी–गुड़ उद्योग।

## 1.9 सारांश

भारत के मानचित्र में कुमाँऊ और गढ़वाल का क्षेत्र बहुत बड़ा नहीं हैं। भौगोलिक, आर्थिक तथा ऐतिहासिक स्थितियाँ समान रहने के कारण यहाँ की संस्कृति भी लगभग एक सी रही है, किन्तु दुर्गम पहाड़ियों के कठिन भागों के कारण प्रायः एक क्षेत्र के लोगों का दूसरे क्षेत्र वालों के साथ बहुत कम सम्पर्क हो पाता है।यहाँ के निवासियों में

परम्परा–प्रेम, धार्मिक विश्वास और शुभाशुभ विषयक रूढ़िवादिता की भावनाएँ अत्यधिक मात्रा में पाई जाती हैं। तांत्रिक साधना का क्षेत्र रहने के कारण लोग अभी भी मंत्र–तंत्र, भूत–प्रेत, झाड़–फूंक, जादू–टोने आदि में विश्वास करते हैं।

समग्र उत्तराखण्ड मे रीति–रिवाजों की दृष्टि से काफी वैविध्य है, इसलिए प्रायः किसी भी प्रथा को सम्पूर्ण क्षेत्र के सन्दर्भ में लेने पर विवाद भी हो सकते हैं। कई रीति रिवाजों की चर्चा अन्य अध्यायों में अन्य विषयों के सन्दर्भ में हो चुकी है। कुमाउँनी और गढ़वाली, मनुष्य आम तौर पर सरल, सहज और सादगी पूर्ण प्रकृति के होते हैं।

सामाजिक संरचना का तात्पर्य विभिन्न सामाजिक इकाइयों के तुलनात्मक रूप से स्थिर और प्रतिमानित सम्बन्धों से है।'' सामाजिक संरचना अनेक सामाजिक समूहों, समितियों, संस्थाओं तथा व्यक्तियों की प्रस्थिति और भूमिकाओं को प्रभावित करने वाले नियमों तथा मूल्यों की एक क्रमबद्धता है। सामाजिक संरचना की विशेषताएं अग्रांकित हैं–

- सामाजिक संरचन एक क्रमबद्धता है।
- सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत स्थायी होती है।
- सामाजिक संरचना की अनेक उप – संरचनाए होती है।
- सामाजिक संरचना के विभिन्न अंग परस्पर सम्बन्धित हैं।
- सामाजिक संरचना में मूल्यों का समावेश होता है।
- सामाजिक संरचना के प्रत्येक अंग के निर्धारण प्रकार्य होते है।
- सामाजिक संरचना अमूर्त होती है।
- सामाजिक संरचना का तात्पर्य सदैव संगठन से नही होता।
- सामजिक संरचना स्थानीय आवश्यकताओं से प्रभावित होती है।

## 1.10 तकनीकी शब्दावली

1. **संरचना–** किसी भी वस्तु की संरचना उसके अंगों में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्तः सम्बन्धों को कहते हैं।
2. **पुराण काल–**वह काल जब पुराणों की रचना हुयी थी।
3. **नवागंतुक–** नये आये हुए लोग।
4. **जनजातियाँ–**आधुनिकता की दृष्टि से असंस्कृत माने जाने वाले तथा आदिम और प्राचीन मानव सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले, जंगलों–पहाड़ों व पठारों के निवासी ,मानव समुदाय को आदिवासी या जनजाति कहा जाता है।
5. **परिधान** –वस्त्र

## 1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 1.6.0 के प्रश्न संख्या 1 के लिए देखिये इकाई 1.6.0

खण्ड 1.6.0 के प्रश्न संख्या 2 के लिए देखिये इकाई 1.6.1.5

## 1.12 संदर्भ ग्रंथ सूची


1.बलुनी, दिनेशचन्द्र, *उत्तरांचलः संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एंव पुरातत्व,* प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2006

2.अग्रवाल,सी,एम,*मैन,कलचर एण्ड सोसाइटी इन कुमाँऊ हिमालया* , अल्मोड़ा,1998

3.जोशी, एम.पी., *उत्तरांचल हिमालया,* श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1990

4.जोशी, घनश्याम, *उत्तरांचल का राजनीतिक, सामाजिक एंव सांस्कृतिक इतिहास,* प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2003

## 1.13 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची

1.देसाई, ए.आर., *रूरल, सोश्योलॉजी इन इण्डिया,* पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1969

2.शर्मा,के.एल, *भारतीय सामाजिक संरचना एवं परिवर्तन,* रावत पब्लिकेशन,2006

3.पण्डेय,बी.डी., *कुमाँऊ का इतिहास,* शक्ति प्रैस,अल्मोड़ा,1937

4.रतूड़ी,हरिकृष्ण*, गढ़वाल का इतिहास,* भागीरथी प्रकाशन, पौड़ी,वि,1954

## 1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक संरचना को परिभाषित करते हुए, उसकी विशेषताओं का विवरण कीजिए।

2. उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक परिचय दीजिए।

# इकाई –दो : उत्तराखण्ड में विवाह, परिवार, नातेदारी और स्त्रियों की प्रस्थिति


2.1 प्रस्तावना
2.2 इकाई के उद्देश्य
2.3 संस्कार
2.3.1 संस्कार की परिभाषाऐं
2.3.2 विवाह की अवधारणा
2.3.3 हिन्दू विवाह
2.3.4 हिन्दू विवाह के उददे्श्य
2.3.4.1 धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति
2.3.4.2 रति
2.3.4.3 व्यक्तित्व का विकास
2.3.4.4 सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन
2.3.4.5 पारिवारिक कर्त्तव्यों का पालन
2.3.5 हिन्दू विवाह के प्रमुख संस्कार
2.3.5.1 विवाह का आधार धर्म है
2.3.5.2 हिन्दू विवाह अनेक धार्मिक विधियों द्वारा सम्पन्न होता है
2.3.5.3 हिन्दू विवाहः एक पवित्र संघ
2.3.6 मुस्लिम विवाह
2.3.6.1 मुस्लिम विवाह की शर्तें
2.3.6.2 मुस्लिम विवाह में 'मेहर'
2.3.6.3 मुसलमानों में 'तलाक'
2.4 परिवारः अर्थ एंव परिभाषाऐं
2.4.1 परिवार की प्रमुख विशेषताऐं
2.4.2 परिवार के कार्य
2.5 नातेदारी अर्थ एंव परिभाषाऐं
2.5.1 नातेदारी की प्रमुख श्रेणियाँ
2.5.2 नातेदार की प्रमुख रीतियाँ
2.5.3 स्त्रियों की प्रस्थिति
2.6 सारांश
2.7 तकनीकी शब्दावली
2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.10 सहायक/उपयोगी ग्रंथ सूची
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 2.1 प्रस्तावना

पर्वतीय लोग प्रकृति के निकट रहते हुए प्रकृतिमय जीवन जीते हैं और प्रकृति की विविध शक्तियों को पूजते हैं। प्राचीन काल में उत्तराखण्ड का समाज छोटे–छोटे कबीलों में बटाँ था, तब उनके अपने–अपने विभिन्न रीति रिवाज थे। सांस्कृतिक विकास और राजनैतिक परिवर्तनों के साथ धीरे–धीरे अनेक रीति–रिवाजों में परिवर्तन होने लगे। प्राचीन काल से ही उत्तराखण्ड में अधिकांश जातियों में मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों को मनुस्मृति में वर्णित संस्कार के अनुसार सम्पन्न किया जाता था परन्तु चारों वर्णों के संस्कार सम्बन्धी प्रथाओं में कुछ भिन्नता भी पाई गयी है। हिन्दू समाज में विवाह को एक धार्मिक कृत्य के रूप में स्वीकार किया गया है लेकिन मुस्लिम विवाह एक धार्मिक संस्कार के रुप में न होकर सामाजिक समझौते के रुप में समझा जाता है।

परिवार स्वाभाविक और महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में सबसे प्राचीनतम और पूरे विश्व में पाया जाने वाला प्रमुख संगठन है। यह सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है जो प्रत्येक समाज में पाया जाता है। अन्य प्राणियों के समान मनुष्य में भी जाति–सृजन तथा वंश–संरक्षण की नैसर्गिक प्रेरणाऐं हेाती हैं, इन प्रेरणाओं से ही परिवार तथा घर का जन्म हुआ।

मानव का जन्म परिवार में होता है, यहीं से उसका पालन–पोषण प्रारम्भ होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति परिवार से निरन्तर कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है। परिवार में ही उसे अपने रीति–रिवाज, परम्पराओं एंव रूढ़ियों की शिक्षा मिलती है। परिवार के सदस्य ही मानव के विचारों, मूल्यों, जीवन के ढगों ,भावनाओं आदि को विकसित करते हैं। प्रत्येक बालक या बालिका को माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–चाची, मामा–मामी, दादा–दादी, नाना–नानी अनेक प्रकार के रिश्तेदारों का पता परिवार से ही चलता है। नातेदारी व्यवस्था रिश्तेदारी की ही व्यवस्था है।

## 2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों के माध्यम से उत्तराखण्ड में विवाह, परिवार, नातेदारी और स्त्रियों की प्रस्थिति का परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- संस्कार
- विवाह की अवधारणाः हिन्दू विवाह एवं मुस्लिम विवाह
- परिवारः अर्थ एंव परिभाषाऐं, प्रमुख विशेषताऐं तथा परिवार के कार्य
- नातेदारी अर्थ एंव परिभाषाऐं

- स्त्रियों की प्रस्थिति

## 2.3 संस्कार

हिन्दू समाज में व्यक्तिगत एंव सामाजिक जीवन को सुव्यवस्था प्रदान करने हेतु जिन संस्थागत आधारों को विकसित किया गया है उनमें संस्कार भी एक हैं। संस्कारों का परम्परागत रूप से हिन्दू सामाजिक संगठन में विशेष महत्व रहा है। मानव जीवन को संस्कारित करने के उद्देश्य से,जन्म से मृत्यु तक 16 संस्कारों का विधान किया गया है। ये संस्कार इस प्रकार हैः1.गर्भाधान 2. पुंसवन 3. सीमंतोनयन 4. जातकर्म 5. षष्ठी महोत्सव 6. नामकरण 7. अन्नप्राशन 8. चूड़ाकर्म 9. कर्णवेध 10. अक्षरारम्भ 11. उपनयन 12. विवाह 13. समापवर्तन 14. वानप्रस्थ 15. सन्यास 16. अंत्येष्टि। '

ग्रहसूत्र' में हमें इन सोलह प्रमुख संस्कारों का उल्लेख मिलता हैं। संस्कारों के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं– संस्कार

- व्यक्तित्व का विकास करते हैं।
- आध्यात्मिक प्रगति की दिशा की ओर उन्मुख करते हैं।
- .संस्कार व्यक्तियों में आत्मविश्वास की वृद्धि करते हैं अथवा आत्म–अभिव्यक्ति का माध्यम हैं।
- भौतिक समृद्धि प्राप्त करने हेतु सक्षम बनाते हैं।
- अनुशासित जीवन जीना सिखाते हैं।
- संस्कार नातेदार व्यवस्था को सुदृढ़ करते हैं तथा सामूहिक एकता को बनाए रखने में सहायता प्रदान करते हैं।

संस्कार को अंग्रेजी में "sacrament"कहा जाता है। यद्यपि "ceremony" अथवा "rite" शब्दों का अर्थ भी संस्कार है।

### 2.3.1 संस्कार की परिभाषाऐं

**राजबली पाण्डेय** के अनुसार *''धार्मिक विधि–विधान अथवा वह कृत्य हैं, जो आन्तरिक तथा आध्यात्मिक सौन्दर्य का दृश्य प्रतीक माना जाता है।''***पी.ए.के.अय्यर** के अनुसार *''संस्कारों के लिये निकटतम अंग्रेजी शब्द "sacrament" है ये वह संस्कार हैं जिनका पूरा करने से हिन्दू का जीवन उच्चतर पवित्रता को प्राप्त करता है। ये उनके समस्त जीवन पर छाए हैं, जिस क्षण से वह माँ के गर्भ में आता है, यह मृत्यु तक उसके अंतिम संस्कार (दाह कर्म) को शामिल करते हुए और आगे भी उसकी आत्मा के अन्य विश्व में प्रवेश को सुगम करने के लिये हैं।''* **राजबली पाण्डेय** ने यह भी कहा की *''संस्कार का अर्थ शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से है। इन्हीं अनुष्ठानों से एक हिन्दू समाज का पूर्ण विकसित सदस्य बन पाता है।''* इस प्रकार संस्कार का अर्थ जीवन को परिशुद्ध करने हेतु अपनाई गई कार्य–पद्धति है।

### 2.3.2 विवाह की अवधारणा

साधारण तौर पर यह कहा जा सकता है कि विवाह, समाज द्वारा मान्यता प्राप्त एक सामाजिक संस्था है। इसके द्वारा दो भिन्न लिंग के लोगो को एक साथ रहने, यौन संबंध स्थापित करने, बच्चों को जन्म देने तथा उनका लालन–पोषण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। एक अन्य दृष्टिकोण के आधार पर यह कह सकते है कि विवाह पारिवारिक जीवन का आधार है दो भिन्न लोग बिना विवाह किये पारिवारिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं। समाज द्वारा अनुमोदित स्त्री–पुरूष के संयोग को विवाह कहते हैं, जिससे स्त्री– पुरूष को काम– इच्छा की सन्तुष्टि के लिए समाज द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है । समाज की यह स्वीकृति कुछ संस्कारों को पूरा करने के पश्चात् ही प्राप्त होती है । इस अर्थ में विवाह यौन संम्बधों के नियंत्रण एवं नियमन का साघन है । क्योंकि विवाह का एक रूप नहीं है इसलिए विद्वान भी इसकी परिभाषा के बारे में एक मत नही हैं ।

**बोर्गाडस** के अनुसार, *''विवाह स्त्री–पुरूष को पारिवारिक जीवन में प्रवेश कराने की एक संस्था है।''* **वेस्टरमार्क** ने अपनी पुस्तक **हिस्ट्री ऑफ हयूमन मैरज** में कहा है, *'' विवाह एक या अधिक पुरूषों का, एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह संम्बन्ध हैं जिसे प्रथा या कानून स्वीकार करता है और विवाह करने वाले व्यक्तियों में और उनसे उत्पन्न सम्भावित बच्चों के बीच में एक–दूसरे के प्रति होने वाले अधिकारों और कर्तव्यों का समावेश होता है।''*

**मजुमदार तथा मदन** के अनुसार, *''विवाह साधारणतः एक बन्धन अथवा धार्मिक संस्कार के रूप में स्पष्ट होने वाली वह सामाजिक मान्यता हैं जो दो विषम लिंगी व्यक्तियों को यौन संम्बध और उससे सम्बंधित सामाजिक– आर्थिक सम्बन्धों में सम्मिलित होने का अधिकार प्रदान करती हैं।''*

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि स्त्री–पुरूष दोनों ही मिलकर एक परिवार का निर्माण करते हैं। उनका यह मिलन सामाजिक स्वीकृति है और इसे ही विवाह कहा जाता है, जिसमें एक–दूसरे के प्रति अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की एक व्यवस्था पाई जाती है।

### 2.3.3 हिन्दू विवाह

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के चार पुरूषार्थों को चार कर्त्तव्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहा गया है। गृहस्थ आश्रम में विवाह द्वारा व्यक्ति प्रवेश करता है। इसलिए विवाह को धार्मिक संस्कार के रूप में देखा गया है। यह एक पवित्र बंधन है एंव जन्म–जन्मान्तर का संबंध है। ' प्रजा ' अर्थात् सन्तानोत्पति करके व्यक्ति समाज की निरन्तरता को बनाये रखने में अपना सहयोग प्रदान करता है। यही उसका समाज के प्रति दायित्व भी है। कुछ विद्वानों ने इसे निम्नलिखित परिभाषाओं के द्वारा समझाया है :**पी.एच.प्रभु :** *'' एक हिन्दू के लिए विवाह एक संस्कार है तथा इस कारण विवाह संबंध में जुड़ने वाले पक्षों का संबंध संस्कार रूपों से है ना कि समझौते की प्रकृति का।''* **रामनाथ शर्मा** *''हिन्दू विवाह की परिभाषा एक धार्मिक संस्कार के रूप में की जा सकती है जिसमें धर्म, प्रजोत्पत्ति आदि के भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक प्रयोजनों में एक स्त्री–पुरूष परस्पर स्थायी संबंध मे बँध जाते हैं।''* **के.ए.कपाड़िया** के अनुसार, *''हिन्दू विवाह एक संस्कार है।''* यह स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह एक संस्कार है, जिससे एक व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता है। हिन्दुओं में विवाह, धार्मिक कर्त्तव्य की पूर्ति, पुत्र प्राप्ति, पारिवारिक सुख,

सामाजिक एकता, पितृ ऋण से मुक्ति, पुरूषार्थों की पूर्ति आदि उददे्श्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। सामान्य अर्थों में हिन्दू विवाह से तात्पर्य कुछ धार्मिक संस्कारों के द्वारा समाज में मान्यता प्राप्त स्त्री–पुरूष के विधिवत् मिलन से है जिसका उददे्श्य धर्म,प्रजा और रति के प्रयोजन को पूरा करना है।

### 2.3.4हिन्दू विवाह के उददे्श्य

हिन्दू विवाह के धार्मिक रूप से कुछ उद्देश्य हैं। विवाह द्वारा ही एक व्यक्ति उन दायित्वों को पूरा करता है जिन्हें भारतीय सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य अंग माना जाता है,यथा–

### 2.3.4.1 धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति

हिन्दू विवाह का सर्वप्रथम उददे्श्य धर्म अर्थात कर्त्तव्यों को पूरा करना है। इस सम्बन्ध में धर्म का अर्थ दूसरे व्यक्ति के प्रति कर्त्तव्यों को पूरा करने से है, जिन्हें यज्ञ कहा जाता है। अतः पंच महायज्ञों–देवयज्ञ, ऋषियज्ञ,पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और भूतयज्ञ को पूरा करना हिन्दू विवाह का प्रमुख उददे्श्य है। हिन्दू संस्कृति में पुत्र का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि पुत्र को बिना जन्म दिये पितृ ऋण चुकता नहीं है। पुत्र अपने पूर्वजों को पिण्डदान देता है। बिना श्राद्ध के पूर्वजों की आत्मा को शान्ति नहीं मिलती है।

### 2.3.4.2 रति

रति का अर्थ समाज के मान्यता प्राप्त नियमों के अनुसार यौन सम्बन्धों की स्थापना करना है। वैसे यौन सम्बन्धों की स्थापना प्रत्येक समाज का मुख्य उद्देश्य है किन्तु हिन्दू विवाह में इसे मान्यता देते हुए भी अन्तिम स्थान दिया गया हैं। रति (यौन सम्बन्ध) पुत्र जन्म के लिए आवश्यक होता है।अतः इसे भी धार्मिक उददेश्य माना गया है।

### 2.3.4.3 व्यक्तित्व का विकास

विवाह, स्त्री–पुरूष के जीवन को संगठित बनाने तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। दोनों विवाह के द्वारा मिलकर ही पूर्णता को प्राप्त करते हैं।

### 2.3.4.4 सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन

विवाह के द्वारा व्यक्ति को अपने सामाजिक कर्त्तव्यों का ज्ञान होता है और व्यक्ति उन्हें पूरा करने का प्रयत्न करता है। विवाह के द्वारा ही व्यक्ति संतान उत्पन्न करके समाज की निरन्तरता को बनाये रखता है। विवाह के पश्चात् ही उसको आत्मनिर्भर एवम् स्वतंत्र व्यक्त्तिव प्राप्त होता है ।

### 2.3.4.5 पारिवारिक कर्त्तव्यों का पालन

व्यक्ति को पारिवारिक कर्त्तव्यों का बोध विवाह कराता है और कर्त्तव्यों के पालन की शिक्षा देता है। परिवार की संस्कृति क्या है ? परिवार की आय में वृद्धि कैसे की जाय ? माता पिता के प्रति क्या कर्तव्य हैं ? इन सभी बातों का ज्ञान व्यक्ति को विवाह के बाद ही होता है और साथ ही वह उनका पालन करने का प्रयास करता है।

## 2.3.5 हिन्दू विवाह के प्रमुख संस्कार

हिन्दू विवाह एक धार्मिक कृत्य है। इसमें अनेक संस्कार करने होते हैं। मुस्लिम तथा ईसाई समाज में विवाह एक सामाजिक समझौता माना जाता है परन्तु हिन्दुओं में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता है। इसका कारण यह है कि हिन्दू–विवाह में धर्म को प्राथमिकता दी गयी है। हिन्दू विवाह धार्मिक उद्देश्यों पर आधारित हैं। इसी कारण कहा जाता है कि 'हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।

निम्नलिखित पंत्तियों में यह स्पष्ट किया गया है कि हिन्दू विवाह क्यों धार्मिक संस्कार माना जाता है।

### 2.3.5.1 विवाह का आधार धर्म है

हिन्दू विवाह के कुछ धार्मिक उद्देश्य होते हैं। इसमें धर्म को सबसे उच्च स्थान दिया गया है। यौन सुख को सबसे निम्न स्थान प्रदान किया गया है। इसमें धर्म और 'काम' साथ–साथ चलते हैं काम को भी कर्त्तव्य माना गया है। कामवासना की पूर्ति भी पुत्र की प्राप्ति के लिए ही की जाती है। इस प्रकार हिन्दू विवाह को एक धार्मिक कृत्य माना गया । यही कारण है कि इसे धार्मिक संस्कार कहा जाता है।

### 2.3.5.2 हिन्दू विवाह अनेक धार्मिक विधियों द्वारा सम्पन्न होता है

हिन्दू विवाह अनेक धार्मिक विधियों तथा अनुष्ठानों के पश्चात् ही सम्पन्न होता है। इसी आधार पर हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार कहा जाता है, यथा –

- ***शुभ मुहूर्त*** – विवाह सम्पन्न होने से पूर्व एक शुभ मुहूर्त निकाला जाता है। बालक – बालिका के जन्म के समय को ध्यान में रखकर एक शुभ मुहर्त निकाला जाता है। इसी शुभ दिन विवाह सम्पन्न किया जाता है।
- ***कन्या के घर जाना*** – विवाह सम्पन्न कराने के लिए वर पक्ष, कन्या पक्ष के घर जाता है। वर पक्ष अपने साथ कुछ अन्य व्यक्तियों को भी ले जाता है। ये व्यक्ति वर के सगे सम्बन्धी तथा मित्र होते हैं। इन्हें 'बाराती' कहा जाता है और ये सब मिलकर बारात (Bridegroom's Party) कहलाते हैं यही बारात कन्या पक्ष के यहाँ जाती है।
- ***कन्यादान*** – कन्यादान, हिन्दू विवाह का प्रमुख संस्कार हैं। हिन्दू धर्मग्रन्थों में कन्यादान को महादान माना है। कन्यादान देने वाले को मोक्ष मिलता है, ऐसा विश्वास किया जाता है। पिता अपनी कन्या वर को दान में दे देता है।
- ***यज्ञ वेदी*** – यज्ञ वेदी में अग्नि जलाई जाती है अग्नि को साक्षी मानकर वर तथा वधू को सदैव के लिए एक सूत्र में बाँध दिया जाता है। वर तथा वधू से अग्नि में आहूतियाँ दिलाई जाती हैं।

- ***पाणिग्रहण संस्कार*** – पाणिग्रहण संस्कार में वर तथा वधू एक दूसरे का हाथ पकड़ते हैं। इस समय वर तथा वधू कुछ प्रतिज्ञाऐं करते हैं। कुछ मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है। वर तथा वधू जीवनपर्यन्त साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं।

- ***अष्मारोहण*** – इस कार्य के लिए कन्या का भाई कन्या के पैर को पत्थर पर रखवाता हैं। इस अवसर पर वर अपनी हाने वाली पत्नी से पत्थर की तरह दृढ़ रहने को कहता है।

- ***लाजाहोम*** – इस अनुष्ठान में वधू अग्नि में खीलें डालती है। इस विधि से वधू, वर की दीर्घ आयु होने की कामना करती है।

- ***अग्नि – परिण्यत***– इसमें वर–वधू अग्नि की परिक्रमा करते हुए विवाह के सम्बन्ध को दृढ़ करते हैं।

- ***सप्तपदी*** – सप्तपदी संस्कार में वर–वधू से निश्चित कर्त्तव्यों को पूर्ण कराने की प्रतिज्ञा कराता है। इस संस्कार में वर–वधू गाँठ बाँधे हुए सात कदम चलते हैं।

### 2.3.5.3 हिन्दू विवाहः एक पवित्र संघ

हिन्दू विवाह एक धार्मिक कृत्य है। हिन्दू विवाह के अनेक उदेश्य होते हैं। हिन्दू विवाह पवित्र अग्नि के समक्ष ही सम्पन्न किया जा सकता है। विवाह के समय वर–वधू को कुछ प्रतिज्ञाएँ करनी होती हैं। उन्हें कुछ मन्त्रों का उच्चारण भी करना होता है।हिन्दू विवाह, वर–वधू को सदैव के लिए बाँधता है ं– हिन्दू विवाह एक स्थायी बन्धन होता है। इस बन्धन को तोड़ा नही जा सकता। पति–पत्नी एक–दूसरे के जन्म–जन्मातर के साथी होते हैं। हिन्दू विवाह को ईश्वरीय विधान कहा जाता है। इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में विवाह विच्छेदन की अनुमति नही है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। विवाह के अवसर पर भगवान को साक्षी मानकर कन्यादान करना, उस दान को वर द्वारा ग्रहण करना, अग्नि के चारों ओर फेरे लगाना आदि ऐसे कृत्य हैं जो विवाह को धार्मिक संस्कार बनाते हैं।विवाह हर्ष और उल्लास का अवसर समझा जाता है। उत्तराखण्ड में भी विवाह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। यहाँ हिन्दुओं में प्रचलित ब्रह्म विवाह का प्रचलन सर्वाधिक है तथा इसे सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। अब गांर्न्धव विवाह का प्रचलन चल रहा है और इसमें माता–पिता व परिवार की रजामन्दी भी कहीं–कहीं देखी जाती है। क्षत्रिय और जनजातियों में राक्षस इत्यादि विवाह प्रकार के प्रचलन का ऐतिहासिक उल्लेख भी पाये गये हैं। यहाँ विधवा विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नही हैं यद्यपि विधवा विवाह कम ही होते हैं।

बाल विवाह का प्रचलन दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है। प्रत्येक माता–पिता अपनी सन्तान का विवाह कराना अपना कर्तव्य समझते हैं। उत्तराखण्ड के कुमाँऊ और गढ़वाल मण्डलों में विवाह संस्कार वैदिक मंत्रों के साथ वैदिक रीति से देश के अन्य भागों की भाँति धूम–धाम से सम्पन्न होता है। इसमें कुछ विशिष्टता भी देखने को मिलती है।कुछ समय पहले कृषि और पशुपालन आदि कार्य में अधिकता के कारण माता–पिता नौकरी में गये पुत्र की अनुपस्थिति में ही उसका विवाह करा लेते थे, उसे घट विवाह कहा जाता था। इस प्रकार के विवाह में लड़के की पूर्ण

स्वीकृति होती थी, यह काफी समय तक चर्चे का विषय था।प्राप्त सूचनाओं के आधार पर आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व तक ग्राम में बाल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। विशुद्ध कन्यादान को सामाजिक एंव धार्मिक दृष्टि से उचित माना जाता था। लेकिन वर्तमान समय में बाल विवाह प्रथा समाप्त हो चुकी है।

### 2.3.6 मुस्लिम विवाह

मुस्लिम सामाजिक संस्थाऐं इस्लाम धर्म पर आधारित हैं। मुस्लिम विवाह ''कुरान'' से शासित होते हैं। ''कुरान'' मुहम्मद साहब के कलामों का संग्रह है। समस्त मुस्लिम सामाजिक व्यवस्था कुरान के अनुसार ही है। मुस्लिम विवाह एक धार्मिक संस्कार के रुप में न होकर सामाजिक समझौते के रुप में समझा जाता है। मुस्लिम विवाह कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया गया एक समझौता है। किसी भी समझौते में कम से कम दो पक्ष होते हैं – इसमें एक पक्ष से प्रस्ताव आता है तो दूसरा पक्ष इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति प्रदान करता है। दोनों पक्षों की स्वीकृति हो जाने पर प्रमाण के रुप में कुछ धन का भुगतान करना होता है। मुस्लिम विवाह की भी यही प्रक्रिया जिसमें विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष से आता है, यदि कन्या पक्ष इस प्रस्ताव के पक्ष में अपनी स्वीकृति दे देता है तो वर पक्ष की ओर से प्रमाण के रुप में कुछ धन दिया जाता है। इस धन को मुस्लिम विवाह में 'मेहर' कहते हैं। इस प्रकार से संपन्न विवाह, मुस्लिम बच्चों को जन्म देना और उन्हें कानूनी मान्यता प्रदान करता है। उत्तराखण्ड में भी मुस्लिम समाज में इसी प्रकार विवाह सम्पन्न किए जाते हैं।

### 2.3.6.1 मुस्लिम विवाह की शर्तें

मुस्लिम विवाह की प्रमुख शर्तें निम्न प्रकार से हैं –

- प्रत्येक मुसलमान जो बालिग (15 वर्ष की आयु का) हो, पागल न हो और स्वस्थ मस्तिष्क का हो, निकाह कर सकता है।
- नाबालिग बच्चों का विवाह उनके संरक्षकों की स्वीकृति द्वारा किया जा सकता है। किन्तु ऐसे विवाह को वर–वधू को बालिग होने पर समाप्त करने का अधिकार है।
- विवाह की स्वीकृति दोनों पक्षों की स्वतन्त्र इच्छा से होनी चाहिए।
- विवाह की स्वीकृति के अवसर पर गवाह के रुप में दो पुरुष अथवा एक पुरुष और दो स्त्रियों का होना आवश्यक है।
- एक मुसलमान पुरुष एक समय में चार स्त्रियों तक से विवाह कर सकता है। किन्तु मुसलमान स्त्री एक समय में केवल एक ही पुरुष से विवाह कर सकती है।
- तीर्थ यात्रा के समय वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं किये जा सकते।
- विवाह की स्वीकृति काजी के सम्मुख होनी चाहिए।

➢ जो स्त्री इद्दत की अवधि (तीन या चार मासिक धर्मों के बीच की अवधि) में हो, उसके साथ विवाह अनियमित है।

➢ विवाह की एक आवश्यक शर्त 'मेहर' अर्थात् स्त्री धन है जो विवाह के समय पुरुष द्वारा स्त्री को चुका दिया जाना चाहिए या तय कर लिया जाना चाहिए।

1. विवाह में किसी प्रकार की बाधाऐं नही होनी चाहिए।

### 2.3.6.2 मुस्लिम विवाह में 'मेहर'

मेहर वह धन या सम्पत्ति है जो पति द्वारा पत्नी को विवाह के प्रतिफल के रुप में प्रदान की जाती है। मेहर निम्नलिखित चार प्रकार के होता है–

1. **मेहरे–मुसम्मा या निश्चित मेहर**

यह वह मेहर है जो विवाह के समय इकरारनामे में स्पष्ट कर दी जाती है। इसे पत्नी को पति से विवाह के समय या बाद में पाने का अधिकार होता है।

2. **मेहे–मिस्ल या उचित मेहर –** यदि विवाह के समय कोई मेहर तय न हुआ हो तो अदालत उचित मेहर तय करती है। प्रायः यह लड़की, माँ या बहन के विवाह में मिलने वाली मेहर की धनराशि के आधार पर निश्चित की जाती है।

3. **मेहरे–मुअज्जल या तुरन्त मेहर –** यह वह धनराशि है जो कि पति को अपनी पत्नी को विवाह के तुरन्त बाद देनी पड़ती है। यदि पति मेहर माँगने पर न दे तो स्त्री पति को वैवाहिक अधिकार देने से इंकार कर सकती है।

4. **मेहरे–मुवज्जल या स्थगित मेहर –** यह वह मेहर है जो पति के मरने पर या स्त्री को तलाक देने पर मिलता है। इसे स्थगित मेहर इसलिये कहा जाता है क्योंकि ये पति के मरने या तलाक से पहले नहीं मिलता है।

### 2.3.6.3 मुसलमानों में 'तलाक'

मुसलमान समाज में तलाक की प्रक्रिया अत्यन्त ही सरल है। इसके लिये न्यायालय जाने की आवश्यकता नहीं। तलाक के संबंध में मुस्लिम पुरुष को असीम अधिकार प्राप्त हैं। और वह सामाजिक रुप से अपनी पत्नी को छोड़ सकता है। इनके यहाँ तलाक मुख्यतया दो प्रकार का होता है–

**(i) तलाक के प्रथागत रुप** – मुस्लिम समाज में प्रथागत तलाक मुख्यतयाः छः प्रकार के होते हैं–

1. कोई भी स्वस्थ दिमाग वाला मुसलमान अपनी पत्नी को बिना कारण बताये ही छोड़ सकता है। वह केवल मौखिक रुप से ही निम्न तीन प्रकार से तलाक दे सकता है –

**(i) तलाके अहसन** – इसके अनुसार पति अपनी पत्नी को किसी तुहर (मासिक धर्म) के समय तलाक की घोषणा करता है तथा इद्दत की अवधी तक पत्नी के साथ सहवास नहीं करता है।

**(ii) तलाके हसन** – इनमें पति लगातार तीन तुहरों के समय तक तलाक की घोषणा को दुहराता है और इसे पूरा मान लिया जाता है।

2. **इला** – इला तलाक के अर्न्तगत एक मुसलमान पुरूष कसम लेकर 4 महीने तक अपनी पत्नी से सहवास नहीं करता तो इसे तलाक मान लेते हैं।

3. **खुला** – यह तलाक पति तथा पत्नी की सहमति से होता है। इस तलाक में पति को मेहर की राशि देना आवश्यक नहीं होता है।

4. **मुर्बरत** – यह तलाक भी पति–पत्नी की पारस्परिक स्वीकृति का परिणाम है। पर इसमें तलाक का प्रस्ताव पति द्वारा रखा जाता है, जबकि खुला में तलाक का प्रस्ताव पत्नी द्वारा रखा जाता है। इसमें भी किसी पक्ष को कोई हर्जाना नहीं देना पड़ता है।

5. **जिहर** – यदि पति अपनी पत्नी की तुलना किसी ऐसे संबंन्धी के साथ कर देता है जिसके साथ मुस्लिम कानून के अनुसार विवाह नहीं हो सकता तो पत्नी 'जिहर' तलाक का प्रस्ताव रख सकती है।

मुस्लिम विवाह की पद्धति एवं स्वरूपों का अध्ययन करने से विदित होता है कि मुस्लिम विवाह यौनेच्छा की तृप्ति एंव उत्पन्न सन्तान को सिद्ध करने हेते एक शिष्ट समझौता स्थायी और अस्थायी दोनों प्रकार होता है। इसमें वर, वधू को 'मेहर' देने का वचन देता है। इस समझौते को तोड़ा भी जा सकता है। मुस्लिम विवाह में पुरूषों को असीमित अधिकार दिये गये हैं। पुरूष एक साथ चार स्त्रियों से विवाह कर सकता है। इसमें विवाह–विच्छेद का भी प्रावधान है। कुमाऊँ और गढ़वाल क्षेत्र में यह मुसलमानों में बहुविवाह सामान्यतः कम प्रचलित है।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. 'हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है।' स्पष्ट कीजिए।
2. विवाह की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
3. मुस्लिम विवाह पर एक लेख लिखिए।

## 2.4 परिवारः अर्थ एंव परिभाषाऐं

परिवार स्वाभाविक और महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में सबसे प्राचीनतम और पूरे विश्व में पाया जाने वाला प्रमुख संगठन है। यह सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है जो प्रत्येक समाज में पाया जाता है। अन्य प्राणियों के समान मनुष्य में भी जाति–सृजन तथा वंश संरक्षण की नैसर्गिक प्रेरणाऐं हेाती हैं, इन प्रेरणाओं से ही परिवार तथा घर का जन्म हुआ। प्रमुख विद्वानों ने परिवार को अग्रलिखित परिभाषित किया है–

**मैकाइवर तथा पेज** – *" परिवार पर्याप्त निश्चित यौन – संम्बन्धों द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों को पैदा करने (प्रजनन) तथा लालन–पालन करने की व्यवस्था करता है।*

**किंग्स्ले डेविस** – *" परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिसमें सगोत्रता के सम्बन्ध होते हैं और जो इस प्रकार एक दूसरे के सम्बन्धी होते हैं।'***इलियट तथा मैरिल** – *" परिवार को पति–पत्नी तथा बच्चों की एक जैविक सामाजिक*

*इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'' इनके अनुसार यह एक सामाजिक संस्था भी है और एक सामाजिक संगठन भी है जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।*

**जुकरमैन –** *'' एक परिवार समूह पुरूष स्वामी, उसकी समस्त स्त्रियों और उनके बच्चों को मिलाकर बनता है। कभी–कभी एक या अधिक अविवाहित अथवा पत्नी – विहीन पुरूषों को भी सम्मिलित किया जाता है।'*

**बोगार्डस –** *'' परिवार एक छोटा सामाजिक समूह है जिसमें साधारणतः माता – पिता एंव एक या अधिक बच्चे होते हैं, जिसमें स्नेह एंव उत्तरदायित्व का समान हिस्सा होता है तथा जिसमें बच्चों का पालन – पोषण उन्हे स्वनियंन्त्रित एंव सामाजिक व्यक्ति बनाने के लिए होता है।''*

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि परिवार एक लगभग स्थायी सामाजिक संगठन हैं। बच्चों का जन्म, लालन – पोषण एंव समाजीकरण आदि इसके प्रमुख कार्य होते हैं।

## 2.4.1 परिवार की प्रमुख विशेषताऐं

परिवार की कुछ मुलभूत विषषेताऐं हैं जो सामान्य रूप से विश्व के समस्त परिवारों में पायी जाती है। ये विशेषताऐं निम्नलिखित हैं–

**1.पति – पत्नी का संम्बन्ध** – परिवार का विकास पति–पत्नी के यौन संबंध द्वारा होता है। बिना पति – पत्नी के संबंधों के परिवार की कल्पना नहीं की जा सकती । यह संबंध अनेक रूपों में हो सकता है। कुछ स्थानों पर यह संबंध एक विवाह प्रथा के रूप में पाया जाता है तो कुछ में बहु–विवाह प्रथा के रूप में हो सकता है। स्त्री–पुरूष के संबंधों को नियमित करने वाली संस्था को 'विवाह' कहा जाता है।

**2.यौन सम्बन्ध** – यौन संबंध की प्रवृति प्रत्येक प्राणी में पाई जाती है। वास्तव में, सृष्टि का अस्तित्व ही इस पर निर्भर करता है। मनुष्य में भी काम–वासना प्रबल रूप से पाई जाती है। इस भावना की सन्तुष्टि के लिए ही स्त्री – पुरूष एक–दूसरे के निकट आते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रवृति है जो स्त्री और पुरूष दोनों में पाई जाती है।

**3. रक्त–सम्बन्ध** – परिवार की अन्य विशेषता है उसके विभिन्न सदस्यों का एक–दूसरे से परस्पर रक्त–सम्बन्धों द्वारा जुड़ा होना । माता – पिता द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होती है वह पूर्णतया उनके रक्त से सम्बन्धित होती है।

**4. निवास स्थान** – परिवार की चौथी महत्वपूर्ण विशेषता स्थायी निवास स्थान है। परिवार के समस्त सदस्य अपनी शारीरिक सुरक्षा तथा विभिन्न सुविधाओं के लिए एक ही घर या निवास स्थान में रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर या नौकरी के लिए परिवार का कोई सदस्य किसी स्थान पर चला जाए तो इससे परिवार की समाप्ति नहीं होती, क्योंकि इस प्रकार का जाना अस्थायी होता है।

**5. आर्थिक सुरक्षा** – प्रत्येक परिवार अपने सदस्यों को शारीरिक सुरक्षा प्रदान करता है तथा अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करता है। प्रत्येक सदस्य की भोजन की व्यवस्था करना भी परिवार का कार्य हैं। परिवार में श्रम– विभाजन

के नियमों का अनुसरण होता है, जिसका आधार लिंग तथा आयु है। स्त्रियाँ घर के खाने–पीने की व्यवस्था करती हैं तो पुरूष घर के बाहर अर्थोपार्जन में लगे रहते हैं।

**6. सामाजिक सुरक्षा** – परिवार के प्रत्येक सदस्य का परिवार में विशेष स्थान या पद होता है जैसे– माता–पिता, चाचा–चाची, भाई–बहन इत्यादि। परिवार के सदस्य अपना ही नहीं अपितु परिवार की सामाजिक सुरक्षा के लिए भी जागरूक रहते हैं और इस बात का प्रयास करते हैं कि सामाजिक अपमान तथा दिवालियेपन आदि की नौबत ना आ सके।

**7. सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान** – परिवार, बालक को सर्वप्रथम सामाजिक प्राणी बनने का पाठ पढ़ाता है। सामाजीकरण के अभिकरण के रूप में परिवार का योगदान अद्वितीय है। माता–पिता द्वारा बालक सामाजिक संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करता है तथा विभिन्न शिष्टाचारें से परिचित होता है। सामाजिकता की जो शिक्षा बालक को परिवार से प्राप्त होती है यह अन्य किसी संस्था से प्राप्त नहीं होती । परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला है।

**8. सार्वभौमिकता** – परिवार एक ऐसा संघ है जो विश्व के समस्त समाजों में पाया जाता है यदि हम अतीत का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा की आदि काल से ही परिवार का अस्तित्व चला आ रहा है। इसके स्वरूप में अवश्य परिवर्तन आया है, परन्तु ये सभी समाजों में आज भी पाया जाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि परिवार विश्व में पाई जाने वाली सार्वभौमिक इकाई है।

**9. भावात्मक आधार** – परिवार की अन्य विशेषता उसका भावात्मक आधार है। यह मनुष्य की अनेक स्वाभाविक प्रवृतियों एंव भावनाओं पर आधारित होता है, जैसे वात्सल्य, प्रेम, यौन सम्बन्ध, दया तथा ममता आदि। अन्य संस्थाओं या संघों में इस प्रकार की प्रवृतियाँ नहीं पाई जाती हैं।

**10. सीमित आकार –** परिवार प्राणिशास्त्रीय दशाओं पर आधारित होता है। परिवार का सदस्य वही व्यक्ति बन पाता है जो कि उसमें जन्म लेता है। व्यक्ति, विवाह द्वारा उसका सदस्य बनता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी अन्य परिवार का सदस्य नहीं बन सकता । इन कारणों से परिवार का आकार सीमित होता है।

## 2.4.2 परिवार के कार्य

मनुष्य परिवार में ही जन्म लेता है और परिवार में पलकर ही बड़ा होता है। सामाजिकता का प्रथम पाठ मनुष्य परिवार में ही पढ़ता हैं। अतः सबसे पहली सामाजिक संस्था परिवार ही है, जो शिक्षा प्रदान करने का कार्य करती है और बच्चे को समाज में रहने के योग्य बनाती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। निम्नलिखित कार्यों से हम यह समझ सकते हैं–

**1. प्राणिशात्रीय कार्य निम्न प्रकार के है।**

(i) यौन–इच्छा की पूर्ति

(ii) सन्तानोत्पत्ति

(iii) सन्तान का लालन–पालन

(iv) भोजन की व्यवस्था

(v) जीवन की सुरक्षा

**2. परिवार के निम्न सामाजिक कार्य हैं–**

(i) बालक का सामाजीकरण।

(ii) सामाजिक विरासत का हस्तान्तरण व प्रसार करना।

(iii) सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना।

(iv) सदस्यों को सामाजिक स्थिति प्रदान करना।

(v) सामाजिक नियन्त्रण में सहायक ।

3. **धार्मिक कार्य–** परिवार वह स्थल है जहाँ अनेक धार्मिक एंव आध्यात्मिक बातों की पृष्ठभूमि तैयार होती है। परिवार के समस्त सदस्य सामान्य रीति से ईश्वर की उपासना करते हैं। परिवार में आयोजित होने वाले धार्मिक उत्सवों द्वारा भी व्यक्ति को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

4. आर्थिक कार्य

1 श्रम–विभाजन।

2. व्यावसायिक प्रशिक्षण।

3. उत्पादन की प्रेरणा।

4. आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र।

5. उत्तराधिकार का निश्चय।

**4. मनोवैज्ञानिक कार्य**

1. परिवार बालकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है।
2. परिवार बालकों का संवेगात्मक विकास उचित दिशा में करता है।
3. परिवार में अनेक मूलप्रवृतियों की संतुष्टि होती है।
4. अनेक मानसिक क्रियाओं का विकास परिवार में ही होता है।

**6. नागरिकता का प्रशिक्षण**

1. स्नेह की शिक्षा।
2. सहानुभूति की शिक्षा।
3. सहयोग की शिक्षा।
4. निःस्वार्थता की शिक्षा।
5. आज्ञापालन व कर्तव्यपालन की शिक्षा।

7. **शैक्षिक कार्य –** परिवार को बच्चे की प्रथम पाठशाला कहा गया है। परिवार सामाजिक जीवन की अमर पाठशाला है। परिवार में बालक अपने माता–पिता तथा बड़ों का अनुकरण करके अनेक बातें सीखता है तथा अपना बौद्धिक विकास करता है। अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करने में परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि परिवार समाज की एक आधारभूत इकाई है। परिवारों का वर्गीकरण आधारों पर किया गया है। परिवार प्राणिशास्त्रीय आवश्यताओं को पूरा करके तथा अन्य सभी कार्यों के कारण सामाजीकरण का एक प्रमुख अभिकरण माना जाता है। परिवार को इसलिए बच्चे की प्रथम पाठशाला भी कहा जाता है।

## 2.5 नातेदारी अर्थ एंव परिभाषाऐं

मानव का जन्म परिवार में होता है, यहीं से उसका पालन–पोषण प्रारम्भ होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति परिवार से निरन्तर कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है। परिवार में ही उसे अपने रीति–रिवाज, परम्पराओं एंव रूढ़ियों की शिक्षा मिलती है। परिवार के सदस्य ही मानव के विचारों, मूल्यों, जीवन के ढंगों ,भावनाओं आदि को विकसित करते हैं। प्रत्येक बालक या बालिका को माता–पिता, भाई–बहन, चाचा–चाची, मामा–मामी, दादा–दादी, नाना–नानी अनेक प्रकार के रिश्तेदारों का पता परिवार से ही चलता है। नातेदारी व्यवस्था रिश्तेदारी की ही व्यवस्था है।

इसे निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

**रेडक्लिफ ब्राउन**: *"नातेदारी" सामाजिक उद्देश्यों के लिए स्वीकृत वंश संबन्ध है जो कि सामाजिक संबंधों के परम्परागत संबंधों का आधार है।'***चार्ल्स विनिक** – *''नातेदारी व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे संबंध होते हैं जो कि अनुमानित और वास्तविक वंशावली संबंधों पर आधारित होते हैं।''*

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कह सकते हैं कि नातेदारी का अर्थ रिश्तेदारों अथवा नातेदारी से है नातेदारी में सभी वास्तविक व्यक्तियों को सम्मिलित किया जाता है।

### 2.5.1 नातेदारी की प्रमुख श्रेणियाँ

**प्राथमिक नातेदार** – जिन रिश्तेदारों के साथ हमारा प्रत्यक्ष वैवाहिक या रक्त संबंध होता है, उन्हें हम प्राथमिक नातेदार कहते हैं। प्राथमिक नातेदारों में आठ संबंधियों को सम्मिलित किया जाता है। जैसे पति–पत्नी, पिता–पुत्र, माता–पुत्री, माता–पुत्र, छोटे–बड़े भाई, छोटी–बड़ी बहन तथा भाई–बहन ये वे संबंधी हैं जिनके साथ हमारा घनिष्ट संबंध होता है।
**द्वितीयक नातेदार** – द्वितीयक नातेदार वह नातेदार होते हैं जो हमारे प्राथमिक नातेदारों के संबंधी होते हैं ये हमारे प्राथमिक नातेदारों के कारण जुड़े होते हैं क्योंकि ये हमारे संबंधियों के प्राथमिक नातेदार होते हैं, जैसे चाचा – भतीजे में संबंध, दादा – पोते में संबंध, देवर – भाभी का संबंध। एक बेटे का पिता उसका प्राथमिक नातेदार और पिता का भाई उसका प्राथमिक नातेदार है परन्तु वह बेटे का द्वितीय नातेदार है क्योंकि वह उसका चाचा है।

**तृतीयक नातेदार** – इस श्रेणी में उन नातेदारों को सम्मिलित किया जाता है जो हमारे द्वितीयक नातेदारों के प्राथमिक नातेदार हैं व हमारे प्राथमिक नातेदारों के द्वितीयक नातेदार जैसे साले की पत्नी, साले का लड़का, परदादा हमारा तृतीयक नातेदार है। किसी व्यक्ति के भाई का साला उसका तृतीयक नातेदार है। भाई तो प्राथमिक नातेदार है और साला, भाई का द्वितीयक नातेदार है।मरडोक ने 33 प्रकार के द्वितीयक नातेदार और 151 प्रकार के तृतीयक नातेदार बताऐ हैं।

## 2.5.2 नातेदार की प्रमुख रीतियाँ

नातेदारी की रीतियाँ विभिन्न नातेदारों से हमारे संबंधों को व्यक्त करती हैं, तथा इनसे हमें उनके साथ होने वाले व्यवहार का पता लगता है। अन्य शब्दों में नातेदारी की रीतियों का संबंध दो संबंधियों के बीच व्यवहार से है।

नातेदार की प्रमुख रीतियाँ हैं–

**परिहार सम्बन्ध** – प्रत्येक समाज में चाहे वह उत्तराखण्ड राज्य का हो या किसी और राज्य का या देश का, हर समाज में ''परिहार'' का पालन किया जाता है यह दो नातेदारों को दूरी बनाये रखने तथा प्रत्यक्ष या आमने सामने के सम्बन्ध स्थापित न करने पर बल देती है। जैसे ससुर को बहु से परिहार।

**परिहास सम्बन्ध**– नातेदारी की यह रीति परिहार के विपरीत है, अर्थात इसमें दो नातेदारों के बीच मधुर एंव हँसी–मजाक के सम्बन्धों पर बल दिया जाता है। इसमें दुसरे पक्ष को छेड़ना, तंग करना तथा हँसी–मजाक सम्मिलित होता है। देवर–भाभी, जीजा–साली, साले–बहनोई में सम्बन्ध इस श्रेणी के सम्बन्धों के मुख्य उदाहरण हैं।

**माध्यमिक सम्बोधन**– इस रीति में किसी नातेदार को सम्बोधित करने के लिए किसी अन्य को माध्यम बनाया जाता है। जिन सम्बन्धों में नाम पुकारना अच्छा नहीं समझा जाता, उनमें यह रीति प्रचलित है। गाँव में, और शहरों में यह देखा गया है कि पत्नी अपने पति का नाम न लेकर उसे पुकारने के लिए बच्चे को माध्यम बनाती है। इसका सभ्य–असभ्य समाज,शैक्षिक–अशैक्षिक, वर्ग,से कोई सम्बन्ध नहीं। एक पत्नी अपने पति को 'दीपू के पापा' या 'बीना के पापा' से सम्बोधित करती है ।

**मातुलेय** –यह रीति मातृसत्तात्मक समाजों में प्रचलित है तथा इसमें बच्चों के 'मामा' का अधिकार अधिक होता है और 'मामा' का स्थान नातेदारों में प्रमुख होता है। पिता से भी अधिक अधिकार मामा का होता है। अतः इस रीति में मामा का स्थान सर्वोपरि होता है।

**पितृश्वसा**– इस रीति में पितृश्वसा अर्थात पिता की बहन(बुआ) का महत्वपूर्ण स्थान होता है । बुआ को माता से अधिक सम्मान दिया जाता है। बच्चों का विवाह भी बुआ कराती है।

**सहकष्टी** – इसे सहप्रसविता भी कहते है क्योंकि इसका सम्बन्ध प्रसव काल से होता है । इसमें पति से प्रसवा स्त्री के समान व्यवहार करने अर्थात् कष्ट प्रदर्शित करने की आशा की जाती है। जिस प्रकार का भोजन प्रसवा को मिलता है

वैसा ही पति को भी दिया जाता है। उसे भी अलग कमरे में रखा जाता है तथा प्रसवा अवधि के लिये अछूत माना जाता है।

## 2.5.3 स्त्रियों की प्रस्थिति

प्रत्येक समाज में वह आदिम हो या उन्नत, स्त्रियों की स्थिति और प्रस्थिति का एक अमूर्त स्थान है। समाज में प्रचलित आदर्शों, विश्वासों और मूल्यों के आधार पर उन्हें सौपे गए कार्यों के अनुसार चिन्हित होती है। हमारे देश में प्राचीन समय से ही नारी का स्थान पूज्यनीय रहा है। वैदिक परिवार में पत्नी को कुलभूषण मानकर श्रेष्ठ स्थान दिया गया था। श्वसुर कुल में वह घर के लोगों पर राज्य करती थी । पति के जीवन के प्रत्येक पहलू में पत्नी का महत्व था। अपत्नीक यज्ञ का अधिकार पति को नही था। इसलिए पति – पत्नी दोनों संयुक्त रूप से यज्ञ सम्पन्न करते थे। आज भी पत्नी बिना कोई भी पूजा अधूरी मानी जाती है।

उत्तराखण्ड की संस्कृति के अनुसार यहाँ की महिलाओं को देवी के रूप में पूज्य माना जाता है। नारी के प्रतिरुपों में कन्या, बहन, माता और पत्नी की छवि अंकित है। कुमाँऊ और गढ़वाल मण्डल में महिलाऐं ही समाज की रीढ़ हैं। उसे प्रातः काल से सांय के समय तक घर और बाहर के अनेक कार्य करने होते हैं। सवेरे दूध दोहकर गौशाले की सफाई करती हैं, गाँव के जलस्त्रोत से पानी भरकर लाती हैं, खाना बनाकर परिवार के वृद्धों तथा बच्चों को खिलाती हैं। घर में बंधे गाय–बछड़ों के लिये घास–पात की व्यवस्था करती व खेतों में खुदाई, रोपाई के कार्य भी करती हैं। कार्य जाति पर आधारित नहीं होते, किसी भी जाति की महिला को गाँव में यह काम करने ही पड़ते हैं।उत्तराखण्ड में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। यहाँ अधिकांश पारिवारिक कार्य महिलाऐं ही करती हैं चाहे वह कृषि से संबंधित हो या पशुओं, बच्चों इत्यादि समस्त कार्य स्त्रियों को ही करने पडते हैं। स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है ,स्वतंत्रता से पूर्व के समय में स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। उनका जीवन संघर्षपूर्ण था। समस्त घरेलू कार्य करने के बाद भी उनकी अवश्यकता की पूर्ति नहीं की जाती थी, स्त्रियों की स्थिति दास के समान थी, भरपेट भोजन नहीं मिलता था। भोजन के रुप में मोटा अनाज खाने को दिया जाता था। रात दिन उन्हें गृहकार्य करने पड़ते थे। विवाह के समय इनके कार्य करने की क्षमता को विशेष योग्यता माना जाता था। बहुविवाह प्रचलित थे।

स्वातंत्रोत्तर काल में स्त्रियों की स्थिति में अंतर आया। उनकी शिक्षा में ध्यान दिया जाने लगा व संपत्ति पर भी समान अधिकार प्राप्त हुए। वर्तमान समय में उत्तराखण्ड की स्त्रियाँ न केवल गृहकार्य कर रही हैं वरन वे राजनीति, प्रशासन, समाज सेवा, अध्ययन, अध्यापन, सेना क्षेत्र में नई–नई ऊचाईयाँ छू रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की दशा में पर्याप्त सुधार नहीं आया है। आज भी उन्हें कठिन परिश्रम करना पडता है। शराब का प्रचलन अधिक हो जाने से महिलाओं की समस्याऐं बड़ गईं है। स्त्रियां अभी भी आर्थिक रूप से पराश्रित बनी हुयी हैं। कुऐं के मेढक के समान एक ही स्थान पर रहने के पश्चात भी उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील व आधुनिक है। आज के समय में उत्तराखण्ड के समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन बढ गया है। समाज में स्त्रियों का सम्मान पूर्वकाल की अपेक्षा बढा है। विधवा विवाह को अच्छा नहीं माना जाता, उत्तराखण्ड में स्त्रियां पुनःविवाह के बजाय विधवा जीवन को अधिक अपनाती हैं। बाल विवाह

समाप्त हो गये हैं,उत्तराखण्ड में स्त्रियों की साक्षरता की दर संतोषजनक है। कुमाऊ व गढवाल में स्त्रियों का सम्मान देश के अन्य भागों से अधिक है।

यह समझा जाता है की यहाँ के लोक साहित्य का अधिकांश भाग स्त्रियों द्वारा ही निर्मित है। यहाँ की महिलाऐं अकेले ही जंगल जाकर घास व लकड़ी काटती हैं, नदी,नालों से पानी भरती हैं, कृषि कार्यों में हाथ बटाती हैं और सामूहिक उत्सवों में सक्रिय योगदान देती हैं। स्थानीय नृत्य गीतों में वह पुरुषों के साथ मिलकर अपने भावों को स्वच्छन्द अभिव्यक्त करती हैं। नारी की इस विशिष्ट सामाजिक स्थिति के कारण ही उत्तराखण्ड के लोक साहित्य में यह विशेषता दिखलाई देती है।

## 2.6 सारांश

विवाह साधारणतः एक बन्धन अथवा धार्मिक संस्कार के रूपमें स्पष्ट होने वाली वह सामाजिक मान्यता हैं जो दो विषम लिंगी व्यक्तियों को यौन संम्बंध और उससे सम्बनधित समाजिक– आर्थिक सम्बन्धों में समिलित होने का अधिकार प्रदान करती हैं।

गृहस्थ आश्रम में विवाह द्वारा व्यक्ति प्रवेश करता हैं। 'हिन्दू विवाह की परिभाषा एक धार्मिक संस्कार के रूप में की जा सकती है जिसमें धर्म, प्रजोत्पत्ति तथा आदि के भौतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक प्रयोजनों में एक स्त्री–पुरूष परस्पर स्थायी संबंध मे बँध जाते हैं। हिन्दू विवाह के धार्मिक रूप से कुछ उद्देश्य हैं,जैसे : धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्ति, प्रजा, रति, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन और पारिवारिक कर्त्तव्यों का पालन। उत्तराखण्ड में भी विवाह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। यहाँ हिन्दुओं में प्रचलित ब्रह्म विवाह का प्रचलन सर्वाधिक है तथा इसे सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।अब प्रेम विवाह का प्रचलन चल रहा है और इसमें माता–पिता व परिवार की रजामन्दी भी कहीं–कहीं देखी जाती है। क्षत्रिय और जनजातियों में राक्षस इत्यादि विवाह प्रकार के ऐतिहासिक उल्लेख भी पाये गये हैं। यहाँ विधवा विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं हैं यद्यपि विधवा विवाह कम ही होते हैं।मुस्लिम विवाह एक धार्मिक संस्कार के रुप में न होकर सामाजिक समझौते के रुप में समझा जाता है। मुस्लिम विवाह की कुछ शर्तें होती हैं। मुस्लिम विवाह में मेहर वह धन या सम्पत्ति है जो पति द्वारा पत्नी को विवाह के प्रतिफल के रुप में प्रदान की जाती है।

परिवार स्वभाविक और महत्वपूर्ण सामाजिक संगठनों में सबसे प्राचीनमत और पूरे विश्व में पाया जाने वाला प्रमुख संगठन है। यह सबसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह है जो प्रत्येक समाज में पाया जाता है।

"नातेदारी" सामाजिक उद्धेश्यों के लिए स्वीकृत वंश संबन्ध हैं जो कि सामाजिक संबंधों के परम्परागत संबंधों का आधार है। मरडोक ने 33 प्रकार के द्वितीयक नातेदार और 151 प्रकार के तृतीयक नातेदार बताऐ हैं।नातेदारी की रीतियाँ विभिन्न नातेदारों से हमारे संबंधों को व्यक्त करती हैं, तथा इनसे हमें उनके साथ होने वाले व्यवहार का पता लगता है।जैसे : परिहार सम्बन्ध, परिहास सम्बन्ध, माध्यमिक सम्बोधन, मातुलेय, पितृष्वसा और सहकष्टी ।

उत्तराखण्ड की संस्कृति के अनुसार यहाँ की महिलाओं को देवी के रूप में पूज्य माना जाता है। नारी के प्रतिरुपों में कन्या, बहन, माता और पत्नी की छवि अंकित है। कुमाऊँ और गढ़वाल मण्डल में महिलाऐं ही समाज की

रीढ़ है। उसे प्रातः काल से सांय के समय तक घर और बाहर के अनेक कार्य करने होते हैं।उत्तराखण्ड में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। यहाँ अधिकांश पारिवारिक कार्य महिलाऐं ही करती हैं चाहे वह कृषि से संबंधित हो या पशुओं, बच्चों इत्यादि समस्त कार्य स्त्रियों को ही करने पडते हैं। स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

## 2.7 तकनीकी शब्दावली

**संस्कार–** धार्मिक कर्मकाण्डों द्वारा समाविष्ट गुण
**श्रम–विभाजन–** कार्य को बंटवारे के आधार करना
**मनुस्मृति–** ऋषि मनु द्वारा लिखी गयी कानून की पुस्तक

## 2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 2.3.5 के प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 2.3.5.1 एव 2.3.5.2
खण्ड 2.3.5 के प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 2.3.2
खण्ड 2.3.5 के प्रश्न 3 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 2.3.6, 2.3.6.1 एव 2.3.6.2

## 2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. देसाई, ए.आर., रूरल, सोश्योलॉजी इन इण्डिया, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1969
2. जिमरमैन, फेमिली एण्ड सिविलाइजेशन, न्यूयार्क, 1947
3. घूरिये, सी.एस., कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, पॉपुलर बुक डिपो, 1959
4. कर्वे, इरावती, किनशिप ऑर्गनाइजेशन इन इण्डिया, ऐशिया पब्लिशिगं हाउस, बम्बई, 1965
5. जोशी, घनश्याम, उत्तरांचल का राजनीतिक, सामाजिक एंव सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2003
6. सईयद,ए.आर.,रिलिजन एण्ड ऐथनसिटी अमंग मुस्लिम्स, रावत पब्लिकेशन,
7. बलुनी, दिनेशचन्द्र, उत्तरांचलः संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एंव पुरातत्व, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2006
8. सिंह,वी.एन., आधुनिकता एवं नारी सशक्तीकरण, रावत पब्लिकेशन,2010
9. पटेल,तुलसी, भारत में परिवार : संरचना एवं व्यवहार , रावत पब्लिकेशन,2011
10. अग्रवाल,सी,एम,*मैन,कलचर एण्ड सोसाइटी इन कुमाँऊ हिमालया* , अल्मोड़ा,1998


## 2.10 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची


1. जोशी,एम,पीः उत्तँराचल हिमालया
2. जोशी,एम,पीः उत्तँराचल कुमाऊँ – गढ़वाल
3. गुप्ता,एम,एलः भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाऐं
4. जिमरमैनः फेमिली एण्ड सिविलाइजेशन
5. रिवर्स,डब्ल्यू,एच.आरः किंगशिप एण्ड मैरिज इन इण्डिया


## 2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.उत्तराखण्ड में हिन्दू विवाह का वर्णन कीजिए।

2.उत्तराखण्ड में नातेदारी से आप क्या समझते हैं इसकी विशेषताऐं क्या है?

# इकाई –तीन : उत्तराखण्ड में सामाजिक नियन्त्रण


3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ

3.3.1 सामाजिक नियन्त्रण की परिभाषाऐं

3.4 उत्तराखण्ड में सामाजिक नियन्त्रण का महत्व अथवा आवश्यकता

3.4.1 व्यवहारों में सन्तुलन रखना

3.4.2 सामाजिक एकता की स्थापना करना

3.4.3. पारस्परिक सहयोग की प्रेरणा

3.4.4 सामाजिक अभिमति प्रदान करना

3.4.5 मानसिक तथा बाह्य सुरक्षा

3.4.6 परम्पराओं की रक्षा

3.4.7 व्यक्तित्व का विकास

3.5 सामाजिक नियन्त्रण और समाजीकरण

3.6 सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण

3.6.1 परिवार

3.6.1.1 यौन–व्यवहार का नियमन

3.6.1.2 विवाह संबंधी नियन्त्रण

3.6.1.3 सामाजिक गुणों को विकसित करना

3.6.1.4 सदस्यों की देखरेख

3.6.1.5 सामाजीकरण

3.6.1.6 आर्थिक ढ़ाचे ही धूरी

3.6.2 धर्म

3.6.2.1 धर्म समाज का आधार है

3.6.2.2 धर्म मानव व्यवहार में पवित्रता भरता है

3.6.2.3 धर्म मानव आचरण को संचलित करता है

3.6.2.4 धर्म मानव व्यवहार को नियन्त्रित करता है

3.6.3 शिक्षण संस्थाऐं और सामाजिक नियन्त्रण

3.6.3.1 शिक्षण संस्थाऐं व्यक्तित्व का निर्माण करती है

3.6.3.2 आार्थिक जीवन में योगदान

3.6.3.3 शिक्षण संस्थाऐं और सभ्यता

3.6.3.4 जीवन की पूर्णता और शिक्षा

3.6.4 प्रथा व परम्परा और सामाजिक नियन्त्रण

3.6.5 कानून या विधि

3.6.5.1 पुरस्कार और दण्ड

3.6.6 जनमत

3.6.6.1 प्रचार

3.7 सारांश

3.8 तकनीकी शब्दावली

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.11 सहायक / उपयोगी ग्रंथावली

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 3.1 प्रस्तावना

'नियन्त्रण' शब्द पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट होगा की किसी की असीमित स्वंतन्त्रता में बाधा डालना अथवा कार्यो या व्यवहारों को नियमित करना ही नियन्त्रण है। सामाजिक नियन्त्रण में भी यही भाव छिपा हुआ है। प्रारम्भ में सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ केवल दूसरे समूहों से अपने समूह की रक्षा करना एंव मुखिया के आदर्शों व आदेशों का पालन करना माना जाता था, परन्तु आज इसका एक विस्तृत अर्थ है। इसका प्रयोग विस्तृत रूप में किया जाता है।

सामाजिक नियन्त्रण से हम यह समझ सकते हैं कि समूह द्वारा मान्य या स्वीकृत व्यवहार–प्रतिमान के अनुरूप व्यक्तियों के व्यवहारों को नियमित करना है। इसका तात्पर्य सामाजिक व्यवस्था और उसके नियमन है और इन नियमन का उद्देश्य सामाजिक आदर्शों एंव उद्देश्यों की प्राप्ति है। आन्तरिक रूप से मनुष्य में वे सभी प्रवृत्तियाँ हैं जो पशुओं

में पायी जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक व्यक्ति को यदि स्वतन्त्र छोड़ दिया जाये तो एक व्यवस्थित समाज तथा जीवन की आशा नहीं कर सकते हैं। यह भी सच है कि मानव पशु नहीं है क्योंकि इसमें मानवोचित गुण हैं और इन गुणों का विकास इस कारण सम्भव हुआ है कि मानव को जन्म से लेकर मृत्यु तक समाज के नियन्त्रण में रहना होता है।

समाज का निर्माण अनेक व्यवस्थित तथा परस्पर–निर्भर सामाजिक संबंधों के द्वारा ही होता है। ऐसे सामाजिक संबंध तभी स्थापित किये जा सकते हैं जब व्यक्ति के व्यवहार पर कुछ नियन्त्रण किया जाए। समाज की स्थापना जिन समूहों के सदस्यों से होता है, उनकी विशेषताऐं एक समान नहीं होती हैं और उनके स्वार्थ भी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। सामाजिक नियनत्रण के बिना यह सम्भव है कि सभी व्यक्ति तथा समूह अपनी शक्ति के द्वारा दूसरे पर अधिकार करने के लिए एक–दूसरे से संघर्ष करने लगें। इस संम्भावना को कम करने के लिए प्रत्येक समाज कुछ ऐसे नियमों तथा कार्य के ढंगों को विकसित करता है जिनके द्वारा सभी को अपने समाज के मूल्यों एंव मानदण्डों के अनुसार व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जा सके। इसकी मुख्य विशेषता समूहों के बीच सघर्षों को कम करके पारस्परिक सहयोग को प्रोत्साहन देना होता हैं। शुरूआत में व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखने का कार्य धार्मिक विश्वासों, प्रथाओं तथा जनरीतियों के द्वारा किया जाता था लेकिन वर्तमान समाज एक जटिल और विशाल समाज है जिसमें कानूनों तथा नेतृत्व के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण की स्थापना की जाती है। संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक नियन्त्रण एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा अनेक समूह नियमों के द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहारों में समानता लाने का प्रयत्न करता है तथा उन्हें पारस्परिक संघर्षों से बचाता है।

## 3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों के माध्यम से उत्तराखण्ड में सामाजिक नियंत्रण का परिचय कराना हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ एवं परिभाषाऐं
- उत्तराखण्ड में सामाजिक नियन्त्रण का महत्व अथवा आवश्यकता
- सामाजिक नियन्त्रण और सामाजीकरण
- सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण

## 3.3 सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ

बचपन से व्यक्ति माता–पिता और परिवार के बड़े–बूड़ों के नियन्त्रण में रहता है, और शिक्षक या शिक्षण संस्था के नियन्त्रण में रहता है। राज्य के सदस्य होने के कारण उस पर कानून एंव विधि का नियन्त्रण होता है। अपने जीवन में उसे धर्म के नियंत्रण को स्वीकार करना पड़ता है और वृहत्तर सामाजिक अन्तःक्रियाओं के दौरान उसे यह देखकर

स्वंय आश्चर्य होता है कि वह कितने प्रकार से सामाजिक विश्वासों, जनरीतियों, आचारों, परम्पराओं और प्रथाओं के द्वारा हर पल नियंत्रित होता है । वास्तव में नियन्त्रण के बिना जीवन–व्यवस्था और समाज–व्यवस्था तहस–नहस हो जायेगी।

मानव अपने स्वभाव से ही स्वार्थी है, हिंसा, द्वेष की भावना और अपने स्वाथों की सर्वप्रथम पूर्ति के लिये प्रयास करते रहना मानवीय व्यक्तित्व की कुछ सामान्य और स्वाभाविक विलक्षणताऐं हैं। ऐसी स्थिति में मानव को यदि पूर्ण स्वतंत्रता दी जाये तो वह अपनी मनमानी से समाज की व्यवस्था को बिगाड़ कर एक असभ्य समाज बना देगा। समाज द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों को ही सामाजिक नियंत्रण कहते हैं।

**परिभाषाऐं**

*मेकाइवर एवं पेज के शब्दों में, ''सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ उस ढ़ंग से है जिनके द्वारा सपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील संतुलन को बनाये रखने के लिये कार्य करती है।''*

*ऑगबर्न तथा निमकॉफ ने कहा है, ''व्यवस्था और स्थापित नियमों को बनाये रखने के लिये किसी भी समाज द्वारा डाले गये दबाव के प्रतिमान को उस समाज की नियन्त्रण व्यवस्था कहा जाता है।''*

*रॉस के कथनों में, ''सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उन समस्त शक्तियों से है जिनके द्वारा समाज अपने सदस्यों को मान्य व्यवहार–प्रतिमानों के अनुरुप बनाता है।''*

*बोटोमोर के अनुसार, '' सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य मूल्यों तथा आदर्श नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों के बीच के तनाव व संघर्ष दूर अथवा कम किये जाते हैं।''*

*गिलिन और गिलिन ने लिखा है, ''सामाजिक नियन्त्रण अनेक प्रयत्नों जैसें– सुझाव, अनुनय, प्रतिरोध, दबाव या बल प्रयोग आदि की व्यवस्था है जिसके द्वारा समाज किसी समूह को मान्यता प्राप्त व्यवहार प्रतिमानों के अनुरूप बनाता है।''*

यह स्पष्ट है कि सामाजिक नियन्त्रण का अभिप्राय सामाजिक मूल्यों और मानदण्ड़ों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा समूह में व्यक्तियों के बीच उत्पन्न होने वाले तनावों और संघर्षों को दूर किया जा सके।

## 3.4 उत्तराखण्ड में सामाजिक नियन्त्रण का महत्व अथवा आवश्यकता

किसी भी समाज में सामाजिक नियन्त्रण के विस्तृत प्रावधान अपरिहार्य होते हैं, उत्तराखण्ड का समाज भी इसका अपवाद नहीं है।सामाजिक नियन्त्रण द्वारा कुछ ऐसे कार्यों अथवा उद्देश्यों को पूरा किया जाता है– जो समाज के संगठन तथा एकीकरण के लिए जरूरी है। एक स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए सामाजिक संगठन व सुव्यवस्था का होना अति आवश्यक है और यह कार्य सामाजिक नियन्त्रण द्वारा ही पूरा किया जाता है। प्रत्येक समूह के विभिन्न सदस्यों की मनोवैज्ञानिक इच्छाऐं एक दूसरे से भिन्न होती हैं। सभी व्यक्ति भिन्न कार्य प्रणालियों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करते हैं। सामाजिक नियन्त्रण का महत्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि इन दशाओं के बीच नियन्त्रण की व्यवस्था के द्वारा ही समाज के सन्तुलन को बनाये रखना संभव हो पाता है।

इस संदर्भ में निम्नलिखित आवश्यक्ताओं अथवा उद्देश्यों का उल्लेख किया जा सकता हैः

### 3.4.1व्यवहारों में सन्तुलन रखना

सामाजिक नियन्त्रण की आवश्यकता व्यक्तिगत व्यवहार को नियंत्रित करने के लिये भी होती है। व्यक्ति और व्यक्ति में, व्यक्ति और समूह में तथा समूह और समूह में संघर्ष की सम्भावना हमेशा रहती है। यदि हम उत्तराखण्ड के परिपेक्ष में बात करें, तो यहाँ हमारी मनोवृत्तियाँ रूढ़िवादी हैं, लेकिन व्यवहार अब आधुनिकता को महत्त देते हैं, इससे व्यक्तिगत जीवन में तरह–तरह के तनाव उत्पन्न होते हैं और सामाजिक व्यवस्था कमजोर हो जाती है। पलायन के कारण लोगों की मानसिकता में परिर्वतन हो रहा है । सामाजिक संगठन के लिए यह जरूरी है कि समूह में व्यक्तियों की मनोवृत्तियों तथा उनके विचारों में संतुलन हो।

### 3.4.2 सामाजिक एकता की स्थापना करना

प्राणिशास्त्रीय भिन्नताओं, आदतों, रूचियों, प्रथाओं व परम्पराओं में भी विभिन्नताओं के कारण और अन्य विश्वासों, धर्मों, आदर्शों में विभिन्नताओं के कारण होती है। यदि नियन्त्रण न हो तो वे सदैव संघर्ष के द्वारा अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए प्रयत्न करेंगे। यह सामाजिक व्यवस्था को विघटित कर सकता है, परन्तु सामाजिक नियन्त्रण के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रस्थिति के अनुसार अपने दायित्वों का निर्वाह करता है। एक सुलझी हुई सामाजिक व्यवस्था द्वारा पारस्परिक सहयोग के लक्ष्य को प्राप्त करना ही सभी के हित में है।परन्तु सामाजिक संगठन के लिए किसी भी समूह के सदस्यों में समान दृष्टिकोण तथा समान मनोवृत्तियों का होना अत्यधिक आवश्यक है। यही प्रमुख विशेषता है जो सामाजिक एकता का आधार बनती है, सामाजिक नियन्त्रण समूह के सदस्यों के समान नियमों के अनुसार कार्य कराना सिखाती है अर्थात उल्लघन करने पर दण्ड भी देती है। व्यक्ति सामान्य या स्वीकृत ढंग से व्यवहार करना सीखते हैं, जिसके फलस्वरुप उनके व्यवहार में एकरुपता उत्पन्न होती है जो एकता स्थापित करने में सहायता प्रदान करती है।

### 3.4.3.पारस्परिक सहयोग की प्रेरणा

एक संगठित समाज के लिये आपसी सहयोग बहुत जरुरी है। यदि एक दूसरे के बीच सदैव सघर्ष की भावना रहेगी तो एकता कभी नहीं आयेगी। व्यक्ति सिर्फ अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये कार्य करेगा और इससे समाज एक मानव समूह नहीं बल्कि एक असभ्य तथा जानवरों के समान व्यवहार करेगा।

### 3.4.4 सामाजिक अभिमति प्रदान करना

हमारे समाज में अनेक प्रथाओं, परम्पराओं, जनरीतियों, रुढ़ियों आदि का प्रचलन होता है। प्रचलन होता है। प्रत्येक व्यक्ति को इसे स्वीकार करना पडता है। सामाजीकरण की प्रकिया से व्यक्ति समाज के ढंग को सीखता है।

सामाजिक नियन्त्रण के द्वारा व्यक्ति व्यवस्था में रहता है। अनेक सामाजिक व्यवहारों व भावनाओं को सामाजिक अभिमति प्रदान करना भी सामाजिक नियन्त्रण का एक प्रमुख उद्देश्य है।

### 3.4.5 मानसिक तथा बाह्य सुरक्षा

मानसिक सुरक्षा का तात्पर्य है कि व्यक्तियों को यह विश्वास हो कि कोई भी व्यक्ति उनके हितों पर आघात नही करेगा जबकि बाह्य सुरक्षा का अभिप्राय आजीविका तथा सम्पत्ति के क्षेत्र में सुरक्षा प्राप्त करना है। सामाजिक नियन्त्रण की व्यवस्था व्यक्ति की समाज–विरोधी प्रवृति को दबाकर अनेक नियमों के द्वारा उसे समाज से अनुकूलन करना सिखाती है तथा ऐसे व्यवहार करने के लिए बाध्य कराती है जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त हों। यह स्पष्ट है कि समाज के आन्तरिक संगठन व व्यवस्था के लिए सामाजिक नियन्त्रण की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

### 3.4.6 परम्पराओं की रक्षा

हमारा समाज, हमारी देव भूमि एक धार्मिक स्थान के अलावा कई जातियाएंव जनजातियों का निवास स्थान रहा है। हर एक समूह और संगठनों की अपनी–अपनी रीति–रिवाज, रहन–सहन, आदतें रही हैं। परम्पराएँ लम्बे अनुभवों पर आधारित होती हैं तथा इनका कार्य व्यवस्थित रूप से व्यक्तियों की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। सामाजिक संगठन को बनाए रखने में भी परम्पराओं की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परम्पराओं के टूटने पर किसी ना किसी रूप में समाज में समस्याऐं उत्पन्न होती है जो सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ देती हैं । सामाजिक नियन्त्रण सभी व्यक्तियों को परम्पराओं के अनुसार व्यवहार करने का प्रोत्साहन देता है। इसी से संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है।

### 3.4.7 व्यक्तित्व का विकास

सामाजिक नियन्त्रण के सभी कार्यों में व्यक्तित्व का समुचित विकास सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। व्यक्तित्व के विकास लिए सामाजिक गुणों की सीख तथा कुशलताओं का विकास आधारभूत है। जिन समाजों में सामाजिक नियन्त्रण कमजोर होता है, वहाँ लोगों का व्यक्तित्व अपनी संस्कृति के अनुरूप नहीं होता। वास्तव में, सामाजिक नियन्त्रण वैयक्तिक तथा सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि करके पारस्परिक सहयोग तथा एकता प्रदान करता है। प्राचीन व्यवस्था को बनाए रखने के लिए सामाजिक विभिन्नताओं को एकरूपता में परिवर्तित करने के लिए व्यक्तिगत व्यवहारों को नियन्त्रित करने के लिए और समाज की रूचियों व व्यवहारों को सामाजिक अभिमति प्रदान करने के लिए सामाजिक नियन्त्रण का अत्यधिक महत्व है । सामाजिक नियन्त्रण सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को करता है। सामाजिक नियन्त्रण का पहला कार्य मानव समाज में सुव्यवस्था स्थापित व कायम रखने की समस्या को सुलझाना है। दूसरा कार्य, समाज के विभिन्न विरोधी समूहों को जनता की अर्थात, सबकी भलाई के लिए एकसाथ मिलाना और उन पर नियन्त्रण रखना तथा निश्चित स्थिति प्रदान करना है। समुदाय के मान्य व्यवहार–प्रतिमान को लोगों के सम्मुख

प्रस्तुत करना तथा उसे स्वीकार करने के लिए लोगों को समझाना सामाजिक नियन्त्रण का तीसरा कार्य है। सामाजिक नियन्त्रण ही सभी सदस्यों तथा समूह के सामने विकास के लिए एक व्यवस्थित व संगठित परिस्थिति प्रस्तुत करता है।

## 3.5 सामाजिक नियन्त्रण और सामाजीकरण

सामाजिक नियन्त्रण और सामाजीकरण एक–दूसरे से घनिष्ठतः सम्बन्धित हैं। व्यक्ति के सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान ही सामाजिक नियन्त्रण की प्रक्रिया भी चलती है। यह कहा जा सकता है कि सामाजीकरण के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण अपने आप हो जाता है। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रक्रिया से बँधा रहता और विभिन्न प्रकार से नियन्त्रित होता रहता है। कुमाँऊ और गढ़वाल में अपनी–अपनी रीति–रिवाज, खान–पान, विवाह प्रक्रिया, प्रथाएं और परम्पराऐं प्रचलित होती हैं। इसी तरह समाज में सामाजिक व्यवस्था और संगठन को बनाए रखने के लिए कार्य–प्रणालियाँ तथा काम करने के निश्चित तरीके होते हैं। सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान, इन रीति–रिवाजों तथा कार्य प्रणालियों के साथ व्यक्ति का सम्पर्क स्थापित हो जाता है और उसके व्यवहारों में ये सभी रीति–रिवाज आदि धीरे–धीरे जड़ पकड़ने लगते हैं। यह अपनाई हुई और परखी हुई होती है अतः इनको स्वीकार कर लेने पर व्यक्ति को समाज के अनुकूलन करने में सरलता होती है। उदाहरण के तौर पर देश में प्रधानमंत्री, परिवार में पिता, राज्य में मुख्यमंत्री होता है, जो अपनी शक्ति और आधार से व्यवहारों को एक निश्चित दिशा में संचालित अथवा नियंत्रित करने का कार्य सामाजीकरण के विभिन्न साधनों से करते हैं। जैसे परिवार, पड़ोस, शिक्षा–संस्था आदि। सामाजीकरण भी उन्हीं एजेंसियों या अभिकरणों के माध्यम से अधिक होता है जिन एजेंसियों के हाथ में सामाजिक नियन्त्रण की शक्ति अधिक होती है। सामाजीकरण यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। व्यक्ति समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है जिसके द्वारा समाज के मूल्यों और नियमों को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।

## 3.6 सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण

सामाजिक नियन्त्रण एक व्यापक व्यवस्था है जिसे अनेक अभिकरण तथा साधन संयुक्त रूप से प्रभावपूर्ण बनाते है। अभिकरण(agency) का तात्पर्य किसी भी ऐसी सत्ता, समूह अथवा संगठन से है जो नीतियों का निर्माण करता है अथवा नियमों को समूह और व्यक्ति पर लागू करता है। इस प्रकार कुछ विशेष व्यक्तियों, समूहों अथवा समुदाय से जीवन को नियन्त्रित करने में अभिकरण एक प्रत्यक्ष माध्यम है। उदाहरणार्थ–परिवार को 'अभिकरण' कहा जाएगा क्योंकि वह अपने सदस्यों पर नियन्त्रण स्थापित करता है तथा हास्य, व्यंग और बहिष्कार के द्वारा भी उन पर नियन्त्रण रख सकता है। समाज में सामाजिक नियन्त्रण के एक से अधिक साधन या विधियाँ होती हैं। निम्नलिखित सामाजिक नियन्त्रण के कुछ प्रमुख अभिकरण हैं–

### 3.6.1 परिवार

सामाजिक नियन्त्रण में परिवार सबसे महत्वपूर्ण अभिकरण है। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का उत्तराखण्ड में भी महत्वपूर्ण योगदान है। जनरीतियाँ, लोकाचार, प्रथाऐं तथा नैतिकता आदि अपने आप ही व्यक्तियों को नियन्त्रित नही करते परन्तु यह कार्य परिवार के माध्यम से होता है। यहाँ तक की शिक्षा–संस्थानों का परिचय भी परिवार ही कराता है। परिवार व्यक्ति के सामाजीकरण का प्रमुख साधन है। परिवार एक प्राथमिक समूह है, बच्चा परिवार में जन्म लेता है और परिवार ही उसे समाज के अनुरूप ढालता है। परिवार आरम्भिक जीवन से ही बच्चे को जनरीतियों, लोकाचारों और प्रथाओं की शिक्षा देता है। समाज की नैतिकता से परिचित कराता है, समय–समय पर अनजाने में भी भूल हो जाने पर उससे प्रायश्चित कराता है तथा अनेक पौराणिक गाथाओं और अनुष्ठानों के द्वारा धार्मिक विश्वासों को दृढ़ बनाता है। प्रेम तथा स्नेह स्वंय ही नियनत्रण के प्रमुख साधन हैं जो परिवार में सम्भव हैं।

प्रो0 हेज़ ने कुछ ऐसे तरीके बताये हैं जिनके द्वारा परिवार सामाजिक नियन्त्रण में अनपा योगदान करता है। ये तरीके हैं –

- प्रतिदिन के उपदेश एंव स्वंय के कार्यो द्वारा,
- दिये गये वचन और कार्य की तुलना के द्वारा,
- पड़ोसी के सामने व पीछे कहे गये वाक्यों की तुलना द्वारा,
- अपने सुख दायक अनुभवों को बताकर,
- आकांक्षाओं का वास्तविक रूप बतलाकर अथवा दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखते हुए उपदेश देकर।

परिवार निम्नलिखित वर्णन के द्वारा सामाजिक नियन्त्रण को प्रभावित करता है –

### 3.6.1.1 यौन–व्यवहार का नियमन

परिवार वह प्राथमिक संस्था एंव समूह है जिसके द्वारा मानव की यौन–क्रियाओं का नियन्त्रण और नियमन होता है। परिवार विवाह के द्वारा सामाजिक और कानूनी रूप से मानव की यौन–इच्छा की पूर्ति करता है। हमारे भारतीय समाज में परिवार से बाहर (पति–पत्नी के अलावा) यौन–संबंध को अवैध माना जाता है। व्यक्ति, परिवार से बाहर यौन–संबंध स्थापित करने से डरता है। परिवार यौन–व्यवहारों के नियन्त्रण में एक मुख्य भाग रखता है और वैश्यावृति से भी बचाता है।

### 3.6.1.2 विवाह संबंधी नियन्त्रण

परिवार अपने सदस्यों पर अनेक विवाह संबंधी नियन्त्रण भी लागू करता है। हमारे समाज में परिवार ही यह निश्चित करता है कि विवाह कब, किससे और कैसे करना चाहिए। जीवन साथी चुनते समय गोत्र, जाति, पद आदि का

ध्यान रखा जाता है। हालाकि अब प्रेम विवाह का प्रचलन भी चल रहा है परन्तु परिवार सामाजिक नियन्त्रण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

### 3.6.1.3 सामाजिक गुणों को विकसित करना

परिवार अपने सदस्यों को एक अच्छा नागरिक और मनुष्य बनने में मदद करते हैं और इस प्रकार परिवार सामाजिक नियंत्रण में सहायक होता है। बच्चा, परिवार में कर्तव्य–पालन और आज्ञा–पालन की शिक्षा प्राप्त करता है। माता–पिता कर्तव्य ना केवल स्वंय निभाते हैं परन्तु बच्चों को सीख भी देते हैं। जब बच्चा माता–पिता, बढ़े–बूढ़ों को आपस में प्रेम से रहते देखता है और एक दूसरे को कर्तव्य पालन करते देखता है तो उसके अन्दर भी वे गुण विकसित हो जाते हैं, बाहरी समाज के प्रति भी वह अपने कर्तव्यों को घर से ही सीखता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य आपस में सारे कार्य मिलजुलकर करते हैं और इस प्रकार आपस में सहयोग की भावना को विकसित करते हैं। यही सहयोग की भावना सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होती है। अनुकूलन करने का गुण भी बच्चे  परिवार से ही सीखते हैं। परिवार में विकसित आदत के आधार पर ही व्यक्ति में समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए त्याग की भावना उत्पन्न होती है।

### 3.6.1.4 सदस्यों की देखरेख

प्रत्येक सदस्य को अपने व्यवहारों का आचरण किस तरह से करना चाहिए ये परिवार से सीखता है, यदि कोई सदस्य कोई ऐसा कार्य करता है जिसे समाज की स्वीकृति नहीं है तो सबसे पहले परिवार ही उसे उस कार्य को करने से रोकता है। परिवार अपने सदस्यों की सामान्य रूप से देख–रेख भी करता है और इस रूप में भी वह सामाजिक नियन्त्रण के एक प्रमुख साधन के रूप में सिद्ध होता है।

### 3.6.1.5 सामाजीकरण

परिवार सामाजीकरण की प्रमुख संस्था है। बच्चा परिवार में जन्म लेता है और जीवन भर सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा उससे नियन्त्रित रहता है। परिवार ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। व्यक्ति जब जन्म लेता है तो उसमें कोई सामाजिक गुण नहीं होते हैं, परिवार ही सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा शिक्षा या सामाजिक व्यवहार एंव सदगुण न प्रदान करे तो वो एक जंगली पशु के समान ही बन कर रह जायेगा।

### 3.6.1.6 आर्थिक ढाँचे ही धुरी

परिवार ही अपने सदस्यों का आर्थिक जीवन निश्चित करता है। संपत्ति का उत्तराधिकारी कौन होगा यह परिवार निश्चित करता है। आयु, लिंग और शारारिक क्षमता के अनुसार परिवार ही सदस्यों में श्रम–विभाजन करता है। परिवार ही समाज में एक व्यवस्था बनाये रखता है।

### 3.6.2 धर्म

अलग–अलग समाज में अलग–अलग धार्मिक क्रियाकलापों, धार्मिक प्रतीकों और जादू–टोने, पौराणिक कथाओं आदि का समावेश रहता है। उत्तराखण्ड राज्य की अपनी अनोखी धार्मिक महत्ता है। धर्म अलौकिक विश्वासों और ईश्वरीय सत्ता पर आधारित होता है जिसके नियमों का पालन व्यक्ति पाप और पुण्य अथवा ईश्वरीय शक्ति के भय के कारण करता है। इस शक्ति की अभिव्यक्ति सामान्य रूप से अनेक देवी–देवताओं, स्वर्ग और नरक,, साकार अथवा निराकार ईश्वर जैसी अनेक धारणाओं के रूप में देखने को मिलती है। यह माना जाता है कि धर्म के आदेशों और निषेधों का पालन करना जीवन में सफलता लाता है तथा इसका विरोध और उल्लंघन करने से व्यक्ति का जीवन नियन्त्रण से बाहर हो जाता है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई इत्यादि धर्म बहुत सी रोचक घटनाओं, पौराणिक कथाओं, ईश्वरीय महिमा, कर्मकाण्डों और पवित्र वस्तुओं के माध्यम से यह विश्वास दिलाता है कि धर्म की अवहेलना से व्यक्ति की कितनी दुर्गति हो सकती है और इनका पालन व्यक्ति को कितना समृद्ध बना सकता है। निम्नलिखित विवेचन से हम यह समझ सकते हैं कि हमारे, कुमाँऊ और गढ़वाली दोनों समाजों में धर्म का महत्व अत्यधिक है और इसका प्रभाव हमारे जीवन में मानवता के गुण सिखाता है।

### 3.6.2.1 धर्म समाज का आधार है

उत्तराखण्ड में वास्तव में, धर्म समाज का आधार है। धार्मिक विश्वासों का सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि धर्म जीवन का अंग होता है और उसके प्रति व्यक्ति का विश्वास भी होता है। धर्म समाज के उच्चतम आदर्शों तथा मूल्यों को अपने अन्दर समेट कर उनकी रक्षा करता है।

### 3.6.2.2 धर्म मानव व्यवहार में पवित्रता भरता है

धर्म किसी व्यक्ति के जीवन को दो स्पष्ट भागों में बाँट देता है – साधारण तथा पवित्र। पवित्र जीवन से दूर हो जाना धार्मिक भष्टाचार माना जाता है। इस प्रकार धर्म लोगों को पवित्र कर्म करने की सीख देता है ताकि वह पापों से दूर रहें। दुर्खीम ने कहा है कि धर्म एक सामूहिक आदर्श की अभिव्यक्ति है और इससे व्यक्ति के व्यवहारों तथा आचरण में निखार आता है। इस रूप में धर्म सामाजिक नियन्त्रण का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है।

### 3.6.2.3 धर्म मानव आचरण को संचालित करता है

कॉमटे के अनुसार 'मानवता का धर्म' यह है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व और आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो। आधुनिक समाज उस दिशा में बढ़ रहा है जहाँ अब तक प्रचलित धर्मों का अधिक महत्व नहीं रह जायेगा। धार्मिक विश्वास से मनुष्य में यह धारणा पनप जाती है कि धार्मिक जीवन व्यतीत करने पर उसे इस जीवन में दैवीय वरदान मिल सकता है और ना करने पर अभिशाप भोगना पड़ सकता है । धार्मिक कर्तव्यों का विधान प्रत्येक धर्म में होता है, और यह मानव–आचरण का संचालन करता है। मानव इस लोक की ही नहीं, पारलौकिक जीवन की भी चिन्ता करता है।

### 3.6.2.4 धर्म मानव व्यवहार को नियन्त्रित करता है

सामाजिक नियन्त्रण के एक साधन अथवा अभिकरण के रूप में धर्म के इस महत्व को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। धर्म में जिस शक्ति में विश्वास किया जाता है वह अलौकिक शक्ति मानी जाती है। उस शक्ति का लाभ उठाने के लिए और उसके कोप से बचने के लिए लोग धर्म से संबंधित नियमों का सच्चाई से पालन करते हैं। उत्तराखण्ड में सामान्य देवी–देवताओं के अतिरिक्त स्थानीय देवी–देवताओं को भक्ति और विश्वास से पूजा जाता है। हर धर्म से संबंधित अनेक धार्मिक कथाऐं होती हैं, जिनके माध्यम से लोगों को उपदेश–निर्देश दिये जाते हैं। हर धर्म प्रत्यक्ष रूप में भी अनेक नियमों को प्रस्तुत करता है– जैसे बौद्ध धर्म में अहिंसा से संबंधित अनेक नियम है, जैन धर्म में अहिंसा का आचरण करने, सत्य बोलने और चोरी ना करने आदि के संबंध में कितने ही नियम हैं। इस्लाम धर्म भी अल्लाह के सभी बन्दों को भाई–भाई मानने का उपदेश देता है।

### 3.6.3 शिक्षण संस्थाऐं और सामाजिक नियन्त्रण

वर्तमान में शिक्षण संस्थाओं का महत्व बहुत ज्यादा बढ़ रहा है। शिक्षा जिन्दगी की बुनियादी जरूरत है। संस्कृति व सभ्यता के आदि काल में परिवार, समुदाय और धार्मिक संस्थाऐं ही शिक्षा की मुख्य साधन थीं । औपचारिक रूप में शिक्षा प्रदान करने का दायित्व विद्यालय पर होता है । विद्यालय को हम एक ऐसा स्थान समझ सकते हैं जहाँ बच्चों, युवकों, युवतियों को उन निश्चित रूपों में प्रशिक्षित किया जाता है जो इस व्यापक संसार में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समाज के विकास के साथ–साथ उसकी जटिलता बढती जा रही है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में इतना विकास हो गया है कि परिवार, धर्म या समुदाय के आधार पर स्वाभाविक रूप में ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं रहा। सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में विद्यालय का महत्व हम निम्नलिखित रूप से समझ सकते हैं।

### 3.6.3.1 शिक्षण संस्थाऐं व्यक्तित्व का निर्माण करती है

शिक्षण संस्थाऐं व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं और सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होती हैं। शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से व्यक्ति के तर्क और विवेक में वृद्धि होने से वह स्वंय प्रत्येक व्यवहार के परिणामों को समझने लगता है, इससे आत्म–नियन्त्रण को भी प्रोत्साहन मिलता है, और इस प्रकार व्यक्ति की समाज विरोधी मनोवृति का सामाजीकरण हो जाता है। उत्तराखण्ड में भी हम यह देख सकते हैं कि अशिक्षित समाज की अपेक्षा एक शिक्षित समाज कहीं अधिक नियन्त्रित और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करता है।

### 3.6.3.2 आार्थिक जीवन में योगदान

शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपने व्यवसायों को चुनता है और अपने आश्रितों के लिए रोटी, कपड़ा तथा जीवन संबंधी अन्य आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए धन कमाता है। शिक्षा वह साधन है जो मानव की जीविकोपार्जन की समस्या सुलझाकर अनेक प्रकार के समाज विरोधी कार्यों को रोकने में सहायता प्रदान करती है, जैसे– चोरी, छीना–झपटी, लूट आदि।

### 3.6.3.3 शिक्षण संस्थाऐं और सभ्यता

बनार्ड शॉ के अनुसार शिक्षा का मुख्य कार्य मनुष्यों को सभ्य बनाना है। एक असभ्य मनुष्य पशु समान होता है। शिक्षा के द्वारा उसका मानसिक विकास भी होता है और उसकी सोच विस्तृत होती है। उत्तराखण्ड के कई क्षेत्रों में आज भी अशिक्षा है । नोबेल पुरूस्कार विजेता अर्मत्य सेन ने प्राथमिक शिक्षा को मनुष्य की 'अनिर्वाय शिक्षा आवश्यकता' माना है।

### 3.6.3.4 जीवन की पूर्णता और शिक्षा

सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र में शैक्षिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। शिक्षा कोई विशेष कार्य नहीं करती परन्तु हमें जीवन संबंधी प्रत्येक परिस्थिति के लिए इस प्रकार तैयार करती है कि उसमें हमें अधिकतम सफलता प्राप्त हो सके।मानव का बौद्धिक विकास करके भी शैक्षिक संस्थाऐं सामाजिक नियन्त्रण के कार्यों में अधिकतम सहायता प्रदान करते हैं । शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की समस्त मानसिक शक्तियों, कल्पना, स्मरण, तर्क आदि का विकास होता है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति तर्क द्वारा सोच–विचार कर अपने कार्य करता है, अपने तर्क की शक्ति के आधार पर उचित–अनुचित में भेद करता है और समाज विरोधी कार्य से दूर रहता है। ये सब सामाजिक नियन्त्रण व समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है।

### 3.6.4 प्रथा व परम्परा और सामाजिक नियन्त्रण

परम्परा सामाजिक विरासत का वह अभौतिक अंग है जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों का द्योतक है और जिसकी निरन्तरता पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा बनी रहती है। **जिन्सबर्ग** के शब्दों में, *''परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग है जो व्यक्तियों के एक समुदाय का होता है, और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।''*सामाजिक नियन्त्रण में परम्परा का सबसे प्रमुख योगदान यह है कि यह व्यक्ति के व्यवहारों को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित करता है। परम्परा कुछ निश्चित व्यवहार–प्रतिमानों को प्रस्तुत करती है और समाज के सदस्यों से यह आग्रह करती है कि वे उन्हीं प्रतिमानों का अनुसरण करें। हमारे पूर्वज बहुत प्रयासों के बाद विभिन्न परिस्थितियों में जिन व्यवहारों या क्रियाओं के ढंगों को उचित या सफल पाते हैं, वही व्यवहार के ढंग हमें परंपरा के रूप में प्राप्त होते हैं। इस रूप में परम्परा पूर्वजों द्वारा व्यावहारिक ढंग से परीक्षित व्यवहार के सफल व उपयोगी तरीकों का ही दूसरा नाम है। यही कारण है कि इन तरीकों के संबंध में हमारे मन में दुविधा नहीं होती और हम अपने अन्दर विभिन्न परिस्थितियों में एक सुरक्षा की भावना को स्वतः ही विकसित कर लेते हैं।

जिस समाज का स्वयं अपना कोई परम्परागत आधार नहीं होता है तथा जिसे केवल अन्य समाजों की प्रथाओं, विश्वासों आदि के सहारे रहना पड़ता है, उस समाज के सदस्यों में आत्म सम्मान, देश–गौरव व स्वाभिमान आदि के भावों का अभाव ही रहता है, क्योंकि उसे अपने पृथक तथा स्वतन्त्र अस्तित्व की चेतना ही नहीं हो पाती। यह स्पष्ट है कि कई रूपों में परम्पराऐं सामाजिक नियन्त्रण के स्थापन में अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है।

### 3.6.5 कानून या विधि

सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक अथवा प्रत्यक्ष साधानों में कानून और विधि का एक प्रमुख स्थान है। हमारे भारतीय समाज में धर्म, प्रथा, परम्परा और धर्म का प्रभाव रहता है, परन्तु वर्तमान समाज में कानून का महत्व भी बढ़ रहा है। कानून आचरण के वह सार नियम हैं जिन्हैं इस निश्चितंता से प्रतिपादित किया जाता है कि अगर भविष्य में उनकी सत्ता को चुनौती दी गयी तो उसे अदालतों द्वारा लागू किया जायेगा। कानून, नियम, मानव व्यवहार को नियन्त्रित और नियमित करता है और इन नियमों का उल्लघंन करने वालों को दण्ड देने का उत्तरदायित्व एक प्रभुत्तासम्पन्न राजनैतिक शक्ति या सत्ता पर होता है। प्रथाऐं सामाजिक कार्यविधियां हैं। जिसका निर्माण विशेष सत्ता द्वारा नहीं किया जाता है जबकि कानून राज्य द्वारा बनाया एंव लागू किया जाता है। कानून एक राज्य के क्षेत्र में रहने वाले सभी व्यक्तियों तथा समूहों पर समान रूप से बिना किसी अपवाद के लागू होता है परन्तु प्रथा को लागू करने के लिए इस प्रकार की कोई संगठित व्यवस्था नही होती।

### 3.6.5.1 पुरस्कार और दण्ड

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी के रू‍प में समाज में निवास करता है और उसके सामाजिक कर्तव्य एंव अधिकार भी होते हैं। यदि मनुष्य समाज के मूल्यों के अनुसार अपने कार्य एंव व्यवहार करता है तो उसे सामाजिक प्रंशसा प्राप्त होती है इसी को 'पुरस्कार' भी कहा जा सकता है। यह पुरस्कार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सामाजिक नियन्त्रण का अति महत्वपूर्ण एंव शक्तिशाली साधन है। कभी–कभी तो यह साधन दण्ड से भी अधिक प्रभावपूर्ण सिद्ध होता है। पुरस्कार समाज या समूह द्वारा भौतिक अथवा अभौतिक रूप में दी गई वो सांत्वना है जो कि एक व्यक्ति या समूह को अच्छे कार्य या सेवा के लिए प्रदान की गई हो । पुरस्कार की अवधारणा के संबंध में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम तो यह है कि पुरस्कार का स्वरूप सांस्कृतिक लक्षणों पर आधारित रहता है। दूसरी ओर संस्कृति में उसका महत्व नगण्य होता है। द्वितीय महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरस्कार व्यक्तिगत या सामूहिक दोनों ही रूपों में दिया जा सकता है। भौतिक पुरूस्कार के अर्न्तगत मैडिल, शील्ड, नकद धन, धन सहित अनेक उपाधियां जैसे– 'परमवीर चक्र' 'महावीर चक्र', 'वीर चक्र' आदि अभौतिक पुरूस्कार वह होता है जिसमें पुरूस्कार वस्तु या धन के रूप में ना होकर किसी सामाजिक पद या प्रसंशा के रूप में होता है। जैसे डा0 किरण बेदी, वरिष्ठ पुलिस अफसर 'मैगसेसे' पुरस्कार से सम्मानित की जा चुकी हैं।समाज के अधिकतर व्यक्ति ऐसे ही कार्यों को करना चाहते हैं जिससे की उन्हें प्रशंसा प्राप्त हो। यह प्रशंसा पुरस्कार का ही एक प्रकार है। प्रशंसा मिलने से व्यक्ति में उस अच्छे कार्य को करने का एक विशेष उत्साह आ जाता है और भविष्य में अच्छे कार्य करने की ही सोचता है। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्रशंसा और सम्मान के वशीभूत होकर अच्छे से अच्छा कार्य करने को तैयार हो जाता है। सामाजिक नियन्त्रण में यह अति सहायक परिस्थिति है।

दण्ड सामाजिक प्रतिकार के रूप में वह कष्ट या यातना है जो एक समूह के ही अपराधी सदस्य को उसके अपराध के प्रतिफलस्वरूप न्यायालय द्वारा दी जाती है। **वेस्टरमार्क** के शब्दों में, *''दण्ड वह यातना है जो अपराधी पर उस समाज द्वारा या उस समाज के नाम पर जिसका कि वह स्थायी अथवा अस्थायी सदस्य है, एक निश्चित रूप में*

*लागू किया जाता है। सामाजिक नियन्त्रण के प्रत्यक्ष एंव औपचारिक साधन के रूप में दण्ड का अत्यधिक महत्व है। यह साधन राज्य द्वारा लागू किया जाता है। समाज–विरोधी कार्यों को रोकने के लिए राज्य कानून बनाता है और कानून का उल्लंघन करने अथवा तोड़ने वाले को दण्ड प्रदान करता है। ''*

दण्ड एक ऐसा साधन है जोकि राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों को जनता पर लागू करता है। समाज में शान्ति व्यवस्था और सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्य कुछ कानूनों का निर्माण करता है। चूँकि यह कानून प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित करते हैं।जिस व्यक्ति को जब कोई अपराध करने पर दण्ड दिया जाता है तो वह साधारणतया इसी दृष्टिकोण से दिया जाता है कि वह फिर दोबारा अपराध ना करे। कोई व्यक्ति एक छोटा अपराध करता है और उसे दण्ड दे दिया जाता है तो कई बार व्यक्ति यह भी सोच बैठता है कि जब मुझे अपराधी घोषित कर ही दिया गया है तो क्यों ना मैं हमेशा के लिए अपराध ही को पेशे के रूप में अपना लूं। इस प्रकार दण्ड के उपरान्त भी समाज का व्यवहार व्यक्ति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रहना चाहिए। ऐसा ना होने की स्थिति में यह खतरा उत्पन्न हो जाता है कि वह हमेशा के लिए अपराधी हो जाए। दण्ड का प्राथमिक उद्देश्य अपराधी को कष्ट देने के लिए अथवा दोबारा अपराध करने से रोकने के लिए कष्ट देना है जो अपराध करने के लिए लालायित हो सकते हैं। कुछ अपराध ऐसे होते हं जिनको करने पर अपराधी को कारावास की सजा होती है जिससे कि वह कुछ समय के लिए समाज से दूर हो जाता है। राज्य द्वारा विभिन्न स्थानों पर कारावासों का निमार्ण होता है, इन कारावासो में अपराधियों को रखा जाता है। मृत्यु–दण्ड का प्रचलन समाज में काफी समय से रहा है। इसमें व्यक्ति को किसी कठोर अपराध के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाता है। स्पष्ट है कि दण्ड का उद्देश्य अपराधी को सुधारना है। दण्ड का कार्य अपराधी को केवल अपराध करने से रोकना या उसमें भय उत्पन करना ही नहीं वरन उसको सुधारना भी है ताकि वह एक सभ्य नागरिक बन सके और भविष्य में समाज–विरोधी कार्यों को ना करे। अपराधियों का यह सुधार कठोर दण्ड की अपेक्षा सुधारात्मक–दण्डों से अधिक अच्छे प्रकार से हो सकता है। दण्ड समाज के लिए एक अति आवश्यक शर्त है क्योंकि समाज की व्यवस्था अन्तिम रूप में इसी पर आश्रित है। दण्ड के अभाव में समाज विश्रृंखलता की ओर जाने लगता है। वास्तव में दण्ड से ही समाज में व्यवस्था और शान्ति का बोलबाला होता है क्योंकि इससे समाज के सदस्यों के व्यवहारों का नियन्त्रण व नियमन किया जाता है।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. सामाजिक नियन्त्रण में पुरस्कार और दण्ड के महत्व की व्याख्या कीजिए।

2. परिवार किस प्रकार से सामाजिक नियन्त्रण का अभिकरण है?

3. प्रथा से आप क्या समझते है? सामाजिक नियन्त्रण में परम्परा का क्या महत्व है?

### 3.6.6 जनमत

एक विशाल जन–समूह या एक समुदाय विशेष के सदस्यों द्वारा कुछ ना कुछ पारस्परिक विचार–विमर्श करके सामान्य हित से संबंधित किसी विषय के संबंध में व्यक्त किए गए सुनिश्चित विचार को ही जनमत कहते हैं । **जिन्सबर्ग** के अनुसार, *''जनमत का अर्थ समाज में प्रचलित उन विचारों एंव निर्णयों का समूह है, जो बहुत कुछ निश्चित रूप से प्रतिपादित हैं, जिसमें कुछ स्थायित्व है और जिसके प्रतिपादक उसे सामाजिक समझते हैं क्योंकि वह अनेक मस्तिष्कों के सामूहिक विचार का परिणाम है।''* जनमत का संबंध किसी सार्वजनिक विषय या समस्या से होता है। बहुसंख्यकों के मत को तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक कि अल्पसंख्यक लोगों में भी उस मत के प्रति एकता की अनुभूति न हो सके। इसकी उत्पत्ति सामूहिक आधार पर होती है। जनमत की स्थापना पर प्रायः समाज के प्रतिष्ठित, प्रभुतासम्पन्न और शक्ति प्राप्त वर्गों की रूचियों, हितों और उद्देश्यों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रजातन्त्र में जनमत निर्माण की प्रक्रिया के निम्नलिखित स्तर हैः

1. कोई समस्या या विषय
2. प्रारम्भिक छानबीन संबंधी विचार–विमर्श
3. सार्वजनिक वाद–विवाद
4. मतैक्य या सर्वसम्मति का स्तर

गाँव में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से व्यक्तिगत रूप में परिचित होता है। इस रूप में समुदाय में जनमत का महत्व और भी अधिक हो जाता है। कोई भी व्यक्ति जल्दी ही जनमत के विरूद्ध नहीं जाता और ना ही वह कोई जनमत विरोधी कार्य करना चाहता है। सामाजिक निन्दा का भय उसे ऐसा करने से रोकता हैं। जनमत जनता का ही मत होता है, जिसमें की जन–कल्याण की भावना निहित होती है। अतः जल्दी ही उसे कोई अस्वीकार नहीं कर पाता। इतना ही नहीं, प्राथमिक समाजों में सामाजिक व्यवहार के नियम भी सदैव इसी जनमत ही प्रभावित होते हैं। भारतवर्ष में दहेज–प्रथा हिन्दुओं की एक सामाजिक परम्परा रही है। परन्तु आज जनमत तीव्र गति से इसके विरूद्ध हो रहा है और इसलिए इसकी निन्दा सार्वजनिक रूप से की जा रही है और हो सकता है कि इसका अस्तित्व जल्दी ही समाप्त हो जाए। इस प्रकार स्पष्ट है कि जनमत समाज की संस्थाओं व समितियों, जिसमें कि सरकार भी सम्मिलित है, लोकहित के विरूद्ध कार्य करने से रोकता है और इस रूप में जनतन्त्र का सामाजिक नियन्त्रण के एक प्रभावशाली साधन के रूप में अत्यधिक महत्व है। जनमत जनता की भावनाओं तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए शासकवर्ग को उसी आधार पर अपनी नीति निर्धारित करने मे मदद मिलती है और समाज–सुधारक अपने कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करते हैं।

### 3.6.6.1 प्रचार

प्रचार शब्द अंग्रेजी शब्द 'propaganda' का हिन्दी रूपान्तर है। यह शब्द लैटिन भाषा के 'propagare' शब्द से निकला है , जिसका अर्थ उगाना, बढ़ाना या विकास करना है। आधुनिक समाज में प्रचार के कुछ साधन निम्न हैं–

- प्रेस, समाचारपत्र, पत्रिकाऐं, पुस्तकें आदि
- सिनेमा
- रेडियो, टेलिविजन और इन्टरनेट
- सार्वजनिक भाषण
- लाउडस्पीकर इत्यादि

प्रचार का महत्व सामाजिक नियन्त्रण के एक साधन के रूप में किसी से कम नहीं है। प्रचार द्वारा समाज में विभिन्न प्रकार से अपने सुझावों के रूप में विचार फैलाये जाते हैं जिससे जनता को किसी ना किसी रूप में उन विचारों को ग्रहण करना ही होता है। प्रचार हमारी आर्थिक क्रियाओं और व्यवहारों को नियन्त्रित करके सामाजिक नियन्त्रण में सहायक होता है। प्रचार की प्रविधियों का प्रयोग व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र में अत्यधिक होता है। इश्तहारों, पोस्टरों, फिल्मों तथा टेलीविजन का भी अत्यधिक प्रयोग व्यापारिक प्रचार के लिए किया जाता है। डी.डी.–1, मेट्रो, सोनी, जी., स्टार प्लस व टी.वी के अन्य चैनलों पर व्यापारिक प्रचार किए जाते हैं। हमारी आर्थिक क्रियाऐं इन सभी से काफी सीमा तक नियन्त्रित होती है।

## 3.7 सारांश

'नियन्त्रण' शब्द किसी वस्तु की असीमित स्वंतन्त्रता में बाधा डालना अथवा कार्यों या व्यवहारों को नियमित करना होता है। नियन्त्रण के बिना जीवन–व्यवस्था और समाज–व्यवस्था तहस–नहस हो जायेगी। सामाजिक नियन्त्रण का अर्थ किसी समूह द्वारा मान्य या स्वीकृत व्यवहार–प्रतिमानों के अनुरूप व्यक्तियों के व्यवहारों को नियमित करना है। मानव अपने स्वभाव से ही स्वार्थी है। हिंसा, द्वेष की भावना और अपने स्वार्थों की सर्वप्रथम पूर्ति के लिये प्रयास करते रहना मानवीय व्यक्तित्व की कुछ सामान्य और स्वाभाविक विशेषताऐं हैं। ऐसी स्थिति में मानव को यदि सपूर्ण स्वतंत्रता दी जाये तो वह अपनी मनमानी से समाज की व्यवस्था को बिगाड़ देगा और एक असभ्य समाज बना देगा। सामाजिक नियन्त्रण सभी व्यक्तियों को परम्पराओं के अनुसार व्यवहार करने का प्रोत्साहन देता है। इसी से संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरिक होती है। परम्पराओं के टूटने पर किसी ना किसी रूप में समाज में समस्याऐं उत्पन्न होती हैं, जो सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ देती हैं, इसलिए सामाजिक नियन्त्रण अति–आवश्यक है। उत्तराखण्ड में हमारी मनोवृत्तियाँ रूढ़िवादी हैं, लेकिन व्यवहार अब आधुनिकता को महत्व दे रहे हैं, इससे व्यक्तिगत जीवन में तरह–तरह के तनाव उत्पन्न हो रहे हैं और सामाजिक व्यवस्था कमजोर हो रही है। सामाजिक नियन्त्रण व्यक्तिगत व्यवहार को नियंत्रित करता है और व्यक्तियों की मनोवृत्तियों तथा उनके विचारों में संतुलन लाने का प्रयास करता है। प्राचीन व्यवस्था को बनाए रखने के लिए,सामाजिक विभिन्नताओं को एकरूपता में परिवर्तित करने के लिए तथा व्यक्तिगत व्यवहारों को नियन्त्रित करने के लिए और समाज की रूचियों व व्यवहारों को सामाजिक अभिमति प्रदान करने के लिए सामाजिक नियन्त्रण का महत्व अत्यधिक है । सामाजीकरण वह प्रक्रिया है,जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रवेश करता है। व्यक्ति के सामाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान ही सामाजिक नियन्त्रण की प्रक्रिया भी

चलती है।सामाजिक नियन्त्रण के अनेक अभिकरण है। सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरण के रुप में **परिवार** सबसे महत्वपूर्ण है। परिवार एक प्राथमिक समूह है जो व्यक्ति के सामाजीकरण का प्रमुख साधन है। परिवार प्रारंभ से ही बच्चे को जनरीतियों, लोकाचारों और प्रथाओं की शिक्षा देता है तथा समाज की नैतिकता से परिचित कराता है, समय–समय पर अनजाने में भी भूल हो जाने पर उससे प्रायश्चित भी कराता है और अनेक पौराणिक गाथाओं और अनुष्ठानों के द्वारा धार्मिक विश्वासों को दृढ़ बनाता है। उत्तराखण्ड में,वास्तव में, धर्म समाज का आधार है। **धर्म** के आदर्शों और निषेधों का पालन करना जीवन में सफलता लाता है तथा इसका विरोध और उल्लंघन करने से व्यक्ति का जीवन नियन्त्रण से बाहर हो जाता है।धर्म में जिस शक्ति में विश्वास किया जाता है वह अलौकिक शक्ति मानी जाती है। उस शक्ति का लाभ उठाने के लिए और उसके कोप से बचने के लिए लोग धर्म से संबंधित नियमों का सच्चाई से पालन करते हं। **शिक्षण–संस्थाओं** के माध्यम से व्यक्ति के तर्क और विवेक में वृद्धि होने से वह स्वंय प्रत्येक व्यवहार के परिणामों को समझने लगता है, इससे आत्म–नियन्त्रण को भी प्रोत्साहन मिलता है, और इस प्रकार व्यक्ति की समाज विरोधी मनोवृति का सामाजीकरण हो जाता है।**परम्पराऐं** हमें कुछ निश्चित व्यवहार–प्रतिमानों को प्रस्तुत करती हैं और समाज के सदस्यों से यह आग्रह करती हैं कि वे उन्ही प्रतिमानों का अनुसरण करें। **कानून** राज्य द्वारा बनाया एंव लागू किया जाता है। इन नियमों का उल्लघंन करने वालों को दण्ड देने का उत्तरदायित्व एक प्रभुत्ता सम्पन्न राजनैतिक शक्ति पर होता है।यदि मनुष्य समाज के मूल्यों के अनुसार अपने कार्य एंव व्यवहार करता है तो उसे सामाजिक प्रंशसा प्राप्त होती है जिसे **पुरस्कार** कहते हैं तथा समाज–विरोधी कार्यों को रोकने के लिए राज्य कानून बनाता है जिसका उल्लंघन करने अथवा तोड़ने से **दण्ड** प्रदान किया जाता है। **जनमत,** जनता की भावनाओं तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, और शासकवर्ग को उसी आधार पर अपनी नीति निर्धारित करने में मद्द मिलती हैं और समाज–सुधारक अपने कार्यक्रमों को दिशा प्रदान करते हैं तथा यह सामाजिक नियन्त्रण के एक प्रभावशाली साधन के रूप में महत्व सखता है। **प्रचार** द्वारा समाज में विभिन्न प्रकार से अपने सुझावों के रूप में विचार फैलाए जाते हैं जिससे जनता को किसी ना किसी रूप में उन विचारों को ग्रहण करना ही होता है।यह स्पष्ट है कि सामाजिक नियन्त्रण के कई अभिकरण समाज में होते हैं,जिनके द्वारा समाज अपने सदस्यों की क्रियाओं और व्यवहारों पर नियन्त्रण रखता है तथा समाज में संगठन और व्यवस्था को कायम रखता है। सामाजिक नियन्त्रण एक ऐसी व्यवस्था है जिसके द्वारा अनेक समूह,नियमों के द्वारा अपने सदस्यों के व्यवहारों में समानता लाने का प्रयत्न करते हैं तथा उन्हें पारस्परिक संघर्षों से बचाते हैं।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सामाजिक नियन्त्रण के एकाधिक अभिकरण समाज में होते हैं और उनके द्वारा समाज अपने सदस्यों की क्रियाओं और व्यवहारों पर नियन्त्रण रखते हुए समाज में संगठन और व्यवस्था को कायम रखता है। उत्तराखण्ड के सरल और सादे समाज में विशेषतः प्रथा,परम्परा,रूढ़ि,संस्कार,धर्म आदि द्वारा ही सामाजिक नियन्त्रण हो जाता है,परन्तु आधुनिक जटिल तथा बड़े समाजों में प्रथा,परम्परा आदि अपर्याप्त तथा प्रभावहीन होते हैं,इसलिए कानून,राज्य,पुलिस,सेना आदि द्वारा व्यक्ति तथा समूहों के व्यवहारों तथा कार्यों पर नियन्त्रण रखा जाता है।

## 3.8 तकनीकी शब्दावली

**जनमत –** जनता का मत या विचार

**नियन्त्रण**– किसी की असीमित स्वंतन्त्रता में बाधा डालना अथवा कार्यो या व्यवहारों को नियमित करना ही नियन्त्रण है।

**कानून**– समाज व्यवस्था को चलाने के लिए निर्मित आदेश जिनका परिपालन नागाकिों के लिए आवश्यक होता है।

**दण्ड**– एक ऐसा साधन जो राज्य के द्वारा बनाए गए कानूनों को जनता पर लागू करता है।

## 3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 3.6.5.1

इकाई 3.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 3.6.1

इकाई 3.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 3.6.4

## 3.10 संदर्भ ग्रंथ सूची


मुखर्जी,आर; *सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक परिर्वतन,* विवेक प्रकाशन, 2003

अग्रवाल,भरत, *सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक नियन्त्रण,* विवेक प्रकाशन, 2003

प्रेम,विश्वेश्वर, *हिमालय में भारतीय संस्कृति, चैतन्य प्रकाशन,* कानपुर, 1965


## 3.11 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची


बिष्ट, शेर सिंह, *कुमाँऊ हिमालयः समाज एंव संस्कृति,* अल्मोड़ा, 1999

शर्मा, डी.डी.,*हिमालय संस्कृति के मूलाधार,* सोलन, 1998

रोनेक, जोसफ, एस., *सोशल कन्ट्रोल;* नोस्ट्रेन्ड कम्पनी, 1956

अग्रवाल,जी.के, *मानव समाज एंव समाजशास्त्रीय अवधारणाऐं,* साहित्य भवन, 2008


## निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक नियन्त्रण की परिभाषा दीजिए। सामाजिक नियन्त्रण की क्या आवश्यकता है?
2. सामाजिक नियन्त्रण के क्या उद्देश्य हैं?

4.1 प्रस्तावना

4.2 इकाई के उद्देश्य

4.3 सामाजिक परिर्वतन का अर्थ

4.3.1 सामाजिक परिर्वन की परिभाषाऐं

4.3.2 सामाजिक परिर्वतन की विशेषताऐं

4.3.2.1 सामाजिक प्रकृति

4.3.2.2 विभिन्न प्रतिमान

4.3.2.3 सार्वभौमिक घटना

4.3.2.4 सामाजिक परिर्वतन की गति तुलनात्मक

4.3.2.5 सामाजिक परिर्वतन एक विश्वव्यापी प्रकिया

4.3.2.6 सामाजिक परिर्वतन की भविष्यवाणी नही की जा सकती

4.3.2.7 सामाजिक परिर्वतन एक जटिल तथ्य

4.3.3 आधुनिक समाज में सामाजिक परिर्वतन

4.4 उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन के कारक

4.4.1 सांस्कृतिक कारक

4.4.2 मनोवैज्ञानिक कारक

4.4.3 जैविकीय व प्राणिशास्त्रीय कारक

4.4.4 प्राकृतिक कारक

4.4.5 आर्थिक कारक

4.4.6 जनसंख्यात्मक कारक

4.5 उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन

4.5.1 औद्योगीकरण

4.5.2 नगरीकरण

4.5.3 आधुनिक शिक्षा का प्रसार

4.5.4 पश्चिमीकरण

4.5.5 पलायन

4.5.6 कानूनी एंव संवैधानिक अधिकार व सुविधाए

4.6 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का अर्थ

4.6.1 आधुनिकीकरण की परिभाषाऐं

4.6.2 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण की विशेषताऐं

4.6.2.1 औद्योगीकरण

4.6.2.2 नगरीकरण

4.6.2.3 शिक्षा का महत्व

4.6.2.4 नवीन प्रौद्योगिकी

4.6.2.5 विज्ञान को बढ़ावा

4.6.2.6 विभेदीकरण

4.6.2.7 परम्परात्मकता का ह्रास

4.6.2.8 श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण

4.6.2.9 कार्य प्रणालियों का विकास

4.6.3 आधुनिकीकरण के कारक

4.6.3.1 शिक्षा

4.6.3.2 संचार

4.6.3.3 पश्चिमीकरण

4.6.3.4 राष्ट्रवाद की भावना

4.6.3.5 संस्कृतिकरण

4.6.4 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का प्रभाव

4.6.4.1 परिवार में परिर्वतन

4.6.4.2 विवाह में परिर्वतन

4.6.4.3 शिक्षा में परिर्वतन

4.6.4.4 धार्मिक जीवन में परिर्वतन

4.6.4.5 आर्थिक जीवन में परिर्वतन

4.6.4.6 राजनीतिक जीवन में परिर्वतन

4.6.4.7 जाति व्यवस्था में परिर्वतन

4.7 सारांश

4.8 तकनीकी शब्दावली

4.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.11 सहायक / उपयोगी

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 4.1 प्रस्तावना

सामाजिक परिर्वतन अतीत और आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की विशेषता रही है। कहीं पर इसकी गति तीव्र तो कहीं पर मन्द रही है। समूह के आकार में परिर्वतन, अर्थव्यवस्था में परिर्वतन, सामाजिक संरचना का रूपान्तरण, विज्ञान का विकास, धार्मिक विश्वासों का महत्व, युद्ध, आपदा इत्यादि ऐसे तत्व हैं जो इन परिर्वतनों से सम्बन्धित हैं। समाज के प्रत्येक पहलू में परिर्वतन हुए हैं। व्यवहार में जीवन शैली में या सूचना प्रौद्योगीकी में सामाजिक परिर्वतन भौतिक और अभौतिक संस्कृति में होने वाले परिर्वतनों को भी इसके क्षेत्र में सम्मिलित करते हैं। यह कहा जा सकता है कि परिर्वतन एक व्यापक प्रकिया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिर्वतन को जो समाज में प्रभाव डालता है ,सामाजिक परिर्वतन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वंय प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। समाज के किसी विशेष पक्ष में यह हो सकता है, या समाज के समस्त ढ़ाँचे में आ सकता है। यह किसी ना किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रकिया है।

परिर्वतन प्रत्येक समाज की आवश्यकता है और यह प्रत्येक समाज में सामाजिक विकास की प्रकिया से उत्पन्न होती है। यह प्रकिया समाज की संरचना और कियाकलापों में बदलाव लाती है। एक अलग राज्य के रूप में स्थापित होने के पश्चात उत्तराखण्ड में कई परिर्वतन हुए हैं। कुमाँऊ और गढ़वाल मण्डलों में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिर्वतन हुए हैं,जिसने समाज के कई पहलुओं को प्रभावित किया है । उत्तराखण्ड में प्रगति और वृद्धि कई गाँवों और जिलों में देखने को मिली है। पर्यटन ने एक वृहत रूप लेकर प्रदेश की आर्थिक स्थिति को सुधारा है। शिक्षा के अधिक प्रसार ने लोगों में जागरूकता प्रदान की है। उत्तराखण्ड की 71 प्रतिशत साक्षरता इस बात का साक्ष्य है कि प्रदेश में उन्नति हुई है।उत्तराखण्ड में सामाजिक ढाँचे में विसंगतियाँ भी दृष्टिगत हो रही हैं जैसे– संयुक्त परिवारों का टूटना व वृद्धों के प्रति अनादर की भावना का बढ़ना, नैतिकता का पतन प्रायः देखने में आ रहा है। यहाँ समाज में भौतिकवाद तथा विलासिता बढ़ती नजर आ रही है, और व्यक्तिवाद पनप रहा है, फास्टफूड, रेस्टोरेन्ट, क्रेडिट कार्ड, मोबाइल फोन, इन्टरनेट का प्रयोग बढ़ा है।।

उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का प्रभाव व दिशा दूसरे प्रदेशों से कहीं भिन्न रही है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में कई पारम्परिक संस्थाऐं और गतिविधियाँ फिर से शुरू हो गयी हैं। अब राष्ट्र स्तरीय चैनलों के अतिरिक्त लोकल चैनल भी धार्मिक प्रचार के लिए समर्पित दिख रहे हैं। आवागमन के साधनों को बढ़ाकर लोगों के आपसी सम्पर्क को बढ़ाया जा रहा है । गाँवों में राजनीतिकरण की प्रकिया पंचायती राज की संस्थाओं से और गतिशील हो गई है। विवाह और सम्पत्ति के हस्तान्तरण के मामलों में न्यायिक सुधार से परिवार के पारम्परिक ढाँचे का आधार प्रभावित हुआ है। उत्तराखण्ड के दोनों क्षेत्रों में चाहे व पहाड़ी क्षेत्र हो या मैदानी, परिर्वतन के परिणाम दिखाई पड़ रहे हैं।

## 4.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न तथ्यों के माध्यम से उत्तराखण्ड में सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण का परिचय कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- सामाजिक परिवर्तन का अर्थ,विभिन्न परिभाषाऐं तथा विशेषताऐं
- उत्तराखण्ड में सामाजिक परिवर्तन के कारक
- उत्तराखण्ड में सामाजिक परिवर्तन के घटक
- उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का अर्थ एवं प्रभाव

## 4.3 सामाजिक परिवर्तन का अर्थ

सामाजिक परिवर्तन प्रकृति का नियम है, अथवा सामाजिक परिवर्तन भी प्राकृतिक या स्वाभाविक है। ऐसे किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जो की पूर्णतया अपरिवर्तनशील व स्थिर हो। यदि समाज की व्यवस्था में कोई परिवर्तन या हेर फेर हो जाता है तो उस बदलाव को सामाजिक परिवर्तन कहेंगे। सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक घटना है, ये ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व के सभी समाजों में चलती रहती है। साथ ही सामाजिक परिवर्तन सभी युगों में चलता रहता है। सभी समाजों में परिवर्तन की गति समान नहीं होती, कुछ समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से व कुछ समाजों में मन्द गति से होते हैं। सामाजिक परिवर्तन की दिशा भी सदैव समान नहीं होती समाज में होने वाले परिवर्तन तीन दिशाओं में होते हैं–

1. प्रथम रेखीय परिवर्तन
2. चक्रीय परिवर्तन
3. उतार चढाव का परिवर्तन

समाजिक परिवर्तन में तीन तत्व होते हैं ''वस्तु तत्व'' ''समय'' तथा ''भिन्नता'' इसी प्रकार समय के अनुसार भिन्न–भिन्न होना ही सामाजिक परिवर्तन कहलाता है।

### 4.3.1 सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाऐं

सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाओं में काफी भिन्नता है कुछ विद्वान इसका क्षेत्र सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन तक ही मानते हैं जबकि दूसरे समाजशास्त्री भौतिक एंव अभौतिक संस्कृति में होने वाले परिवर्तन को भी इसके क्षेत्र में समिलित करते हैं।कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों द्वारा दी गई सामाजिक परिवर्तन की परिभाषाऐं इस प्रकार हैं–

**गिलिन तथा गिलिन** *'' सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं, चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं में परिवर्तन से हुऐ हों या सांस्कृतिक साधनों, जनसंख्या की रचना या विचारधारा के परिवर्तन से या प्रसार से अथवा समूह के अन्दर ही आविष्कार के फलस्वरूप हुऐ हों''।*

**गिन्सबर्ग** *'' सामाजिक परिर्वतन से मेरा तात्पर्य सामाजिक ढांचे में परिर्वतन अर्थात समाज के आकार इसके विभिन्न अंगों अथवा इसके संगठन के प्रकार की बनावट एंव सन्तुलन में होने वाले परिर्वतन से है''।*

**जॉनसन** *'' अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिर्वतन का अर्थ सामाजिक ढांचे में परिर्वतन से है''।*

**बोटोमोर** *'' सामाजिक संरचना , सामाजिक संस्थाओं अथवा उनके पारस्परिक संबन्ध में घटित परिर्वतन सामाजिक परिर्वतन है।''*

**किंग्सले डेविस** *'' सामाजिक परिर्वतन से तात्पर्य केवल सामाजिक संगठन अर्थात सामाजिक संरचना तथा प्रकार्यों से घटित होता है।''*

### 4.3.2 सामाजिक परिर्वतन की विशेषताऐं

इन विशेषताओं को अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

#### 4.3.2.1 सामाजिक प्रकृति

सामाजिक परिर्वतन की प्रकृति सामाजिक है, क्योंकि सामाजिक परिर्वतन का संबंन्ध सम्पूर्ण समाज में होने वाले परिर्वतन से है। सामाजिक परिर्वतन समाज के सभी क्षेत्रों मे होता है अतः इनकी प्रकृति सामाजिक मानी जाती है। इस प्रकार से सम्पूर्ण सामाजिक क्षेत्र में हुए परिर्वतन को सामाजिक परिर्वतन कहा जा सकता है और इसलिए इसकी प्रकृति सामाजिक कही गई है।

#### 4.3.2.2 विभिन्न प्रतिमान

सामाजिक प्रतिमान सदैव एक ही प्रकार का नहीं होता है बल्कि सामाजिक परिर्वतन के विभिन्न प्रतिमान होते हैं। यथा– समरेखीय प्रतिमान, चक्रीय प्रतिमान तथा उतार चढ़ाव का प्रतिमान।

#### 4.3.2.3 सार्वभौमिक घटना

सामाजिक परिर्वतन एक सर्वव्यापी प्रकिया है जो हर समाज, स्थान, समय और परिस्थिति में निरन्तर होती रहती है। इसकी गति व दिशा में अन्तर हो सकता है किन्तु यह अवष्यंभावी है।

#### 4.3.2.4 सामाजिक परिर्वतन की गति तुलनात्मक

सामाजिक परिर्वतन सभी समाजों में अवश्य होता है, किन्तु सभी समाजों में इसकी गति समान नही है। इसका मुख्य कारण यह है कि सामाजिक परिर्वतन की गति के संबंन्ध में अनुमान तभी लगाया जा सकता है जबकि हम एक समाज की दूसरे समाज से अथवा एक ही समाज के एक पक्ष की दूसरे पक्ष से तुलना करें।

#### 4.3.2.5 सामाजिक परिर्वतन एक विश्वव्यापी प्रकिया

सामाजिक परिर्वतन दुनिया के हर समाज में घटित होता है। ऐसा कोई समाज नजर नहीं आता है जो लम्बे समय तक स्थिर है। परिर्वतन की रफ्तार कभी धीमी और कभी तीव्र होती है, लेकिन परिर्वतन समाज में चलने वाली एक अनवरत प्रकिया है।

### 4.3.2.6 सामाजिक परिर्वतन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है

सामाजिक परिर्वतन बहुत अनिश्चित होते हैं। इनके बारे में निश्चित पूर्वानुमान लगाना कठिन है। हम अधिक से अधिक परिर्वतन की सम्भावना मात्र कर सकते हैं, परिर्वतनों की प्रवृति का अनुमान लगा सकते हैं किन्तु निश्चित भविष्यवाणी नहीं कर सकते हैं।

### 4.3.2.7 सामाजिक परिर्वतन एक जटिल तथ्य है

सामाजिक परिर्वतन की प्रकिया इतनी जटिल है कि इसे स्पष्ट नहीं किया जा सकता। कब, किस पर, किसका , कितना और कैसा प्रभाव पड़ेगा? इसे जान पाना कठिन है। भौतिक वस्तुओं का परिर्वतन अपेक्षाकृत सरल होता है लेकिन सांस्कृतिक मूल्यों में होने वाला परिर्वतन इतना जटिल होता है कि सरलता से उसका रूप भी समझ में नही आता। सामाजिक परिर्वतनों में जितनी वृद्धि होती जाती है वो उतना ही जटिल और दूरस्थ होता जाता है।

### 4.3.3 आधुनिक समाज में सामाजिक परिर्वतन

आधुनिक समाज में सामाजिक परिर्वतन ना तो मन चाहे ढंग से किया जा सकता है और ना ही पूर्णतः स्वतन्त्र और असंगठित छोड़ा जा सकता हैं। आज हर समाज में नियोजन के द्वारा सामाजिक परिर्वतन को नियंत्रित कर वांछित लक्ष्यों में क्रियाशीलता लाई जा सकती है।

## 4.4 उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन के कारक

सामाजिक परिर्वतन एक जटिल प्रकिया है जिसका कोई एक कारण नहीं बताया जा सकता है कुछ प्रमुख कारक जो प्रायः भारत के संदर्भ में व्यवहृत हैं, उत्तराखण्ड में भी लागू होते हैं। इन कारकों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

### 4.4.1 सांस्कृतिक कारक

सांस्कृतिक कारकों में हम धर्म, विचार, नैतिकता , विश्वास , प्रथा , परम्परा , लोकाचार तथा विभिन्न संस्थाओं को सम्मिलित करते हैं। नवीन मूल्य एंव विश्वास सामाजिक संगठन तथा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं, जिसके कारण सामाजिक परिर्वतन होता हैं। कुमाँऊ और गढ़वाल की संस्कृति यहाँ के समाज की वाहक हैं। यहां भी संस्कृति के भौतिक एंव अभौतिक तत्वों में अन्तर होने से निरंतर सामाजिक परिर्वतन होता रहा है।

### 4.4.2 मनोवैज्ञानिक कारक

समस्त मानव सम्बन्ध, मानव–मस्तिष्क की उपज हैं। अतः सामाजिक सम्बन्धों में परिर्वतन, मानव–मस्तिष्क में परिर्वतन के कारण होते हैं। मानव में जिज्ञासा की प्रवृति पायी जाती है। इस प्रवृति ने ही मानव को आविष्कार करने एंव अज्ञात को खोजने की प्रेरणा दी । मानव ने अनेक ऐसे आविष्कार किये हैं जिन्होंने उसके जीवन को ही बदल दिया। अतः मनोवैज्ञानिक कारण भी सामाजिक परिर्वतन के लिए उत्तरदायी हैं।

### 4.4.3 जैविकीय व प्राणिशास्त्रीय कारक

जैविकीय कारक को सामाजिक परिर्वतन का प्रमुख कारक माना जाता है। कभी–कभी एक समाज में रहने वाली प्रजातियों की शारारिक विशेषताओं में एकाएक होने वाले परिर्वतन समाज की संरचना को परिवर्तित कर देते हैं।

### 4.4.4 प्राकृतिक कारक

प्राकृतिक कारक को भौतिक कारक भी कहते हैं। प्राकृतिक कारक के अर्न्तगत पृथ्वी का धरातल, धूप, तूफान, भूकम्प, बाढ़ें, हवाएँ एंव भौगोलिक दशाएँ आती है। इन प्राकृतिक परिस्थितियों एंव शक्तियों से समाज में परिर्वतन होता हैं।

### 4.4.5 आर्थिक कारक

आर्थिक कारक भी सामाजिक परिर्वतन के लिए उत्तरदायी हैं। सामाजिक परिर्वतन के लिए आर्थिक कारक को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। सम्पत्ति का स्वरूप, व्यवसाय की प्रकृति, सम्पत्ति का वितरण, लोगों का जीवन स्तर, व्यापार चक्र आदि सामाजिक संरचना को प्रभावित करते हैं। जिस प्रकार समाज में आर्थिक ढाँचे में परिर्वतन आता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिर्वतन होता रहता है। वास्तव में सामाजिक परिर्वतन एक जटिल तथ्य है इसकी व्याख्या किसी एक कारण के आधार पर नहीं की जा सकती है। अनेक कारणों के योग से ही समाज में परिर्वतन घटित होते रहते हैं।

### 4.4.6 जनसंख्यात्मक कारक

विद्वानों ने उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन का मुख्य कारक समाज में जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं को माना है। विभिन्न समूहों, समितियों और सम्पूर्ण समाज की रचना को उस समाज की जनसंख्या का आधार बहुत अधिक प्रभावित करता है।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. सामाजिक परिर्वतन की विशेषताऐं बतलाइये ।
2. सामाजिक परिर्वतन के कारकों की व्याख्या कीजिए।

## 4.5 उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन

उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन का निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन किया जा सकता है–

### 4.5.1 औद्योगीकरण

औद्योगीकरण का तात्पर्य मानवीय श्रम के स्थान पर बड़ी–बड़ी मशीनों के द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन करना है। आद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरीकरण की प्रकिया में वृद्धि हुई है और इस प्रकार नगरों में वेश–भूषा, खान–पान, व्यवहार व शिष्टता के ढंगों, विचारों तथा मनोवृतियों में व्यापक परिर्वतन हुए हैं। परम्परागत रूप से ग्रमीण जीवन विशुद्ध और सरल था लेकिन औद्योगीकरण में वृद्धि होने से गाँवो में भी नगरीय विशेषताओं का समावेश हो गया। नगरों के उद्योगों में लाखों ग्रामीण व श्रमिकों के कार्य करने से ग्रामीण परिवारों में विघटन की प्रकिया पैदा हो गयी। धीरे–धीरे गाँवों में अनौपचारिक सामाजिक नियन्त्रण का प्रभाव कम होने लगा। औद्योगीकरण से उत्पन्न दुष्परिणामों से बचने के लिए एक वृहत प्राशसनिक पद्धति का विकास हुआ, जिसके फलस्वरूप सामाजिक ढ़ाँचों में भी परिर्वतन होना स्वाभाविक था। औद्योगीकरण का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक उत्पादन करना और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना है। इस प्रवृति ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का व्यापारीकरण कर दिया, तात्पर्य यह नहीं है कि औद्योगीकरण के द्वारा उत्पन्न सभी परिर्वतन हमारी सामाजिक प्रगति में बाधक ही हैं वास्तव में औद्योगीकरण ने श्रम के महत्व को स्पष्ट करके तथा व्यक्ति को एक तार्किक दृष्टिकोण देकर उसे पहले ही अपेक्षा से कहीं अधिक प्रगतिशील भी बनाया है। इस तार्किक दृष्टिकोण के प्रभाव से रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों में कमी हुई और परम्परा के स्थान पर नवीन व्यवहारों का स्वागत किया जाने लगा। इतना ही नही औद्योगीकरण ने आजीविका के साधनों में वृद्धि करके सामान्य स्त्रियों को भी रोजगार के अवसर प्रदान किये। इस प्रकार औद्योगीकरण स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने वाला प्रमुख साधन बन गया। उत्तराखण्ड में जातिवाद की संकीर्णता को कम करने, विभिन्न जातियों को एक साथ काम करने तथा पिछड़े वर्गों की आर्थिक स्थिति को सुधारनें में भी औद्योगीकरण का विशेष योगदान रहा है। इस प्रकार उत्तराखण्ड में सामाजिक परिर्वतन लाने में औद्योगीकरण के महत्व की अवहेलना नहीं की जा सकती है।

### 4.5.2 नगरीकरण

यह किसी कस्बा या बढ़े गाँव के नगर बनने की एक प्रकिया है। इस प्रकिया में गैर कृषि व्यवसायों में लगे हुऐ व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होने लगती है। क्योंकि नगरों में अधिकांश जनसंख्या गैर कृषि व्यवसायों में संलग्न होती है। नगरीकरण के कारण व्यावसायिक विजातीयता बढ़ने लगती है तथा नगरीय जनयंख्या के आकार एंव घनत्व में भी परिर्वतन होना प्रारम्भ हो जाता है। अधिकांश लोग इसे नगरीय बनने अथवा नगरीय जीवन पद्धति को अपनाने की प्रकिया भी कहते हैं। नगरीकरण के विकास के साथ संचार एंव यातायात के साधनों का भी अत्यन्त विकास होता है। विभिन्न जाति एंव धर्म के लोग एक साथ एक जगह रहने लगते हैं। लोगों के बीच विचारों, विश्वासों का एंव ज्ञान का आदान–प्रदान होने लगता है, रेल एंव बसों में विभिन्न जाति के लोग एक साथ यात्रा करने लगते हैं, जिसके कारण परम्परागत मूल्यों में परिर्वतन आते हैं। वर्ग व्यवस्था की स्थापना प्रकिया शहरों में कुछ ज्यादा हो जाती है, अर्थात समाज सिर्फ जाति पर आधारित ना होकर वर्ग व्यवस्था के ढ़ाचे में ढ़लने लगता है और समाज में व्यापक परिवर्तन होते चले जाते हैं।

### 4.5.3 आधुनिक शिक्षा का प्रसार

शिक्षा अपने आप में सामाजिक गतिशीलता का कोई कारण नहीं है, पर ये निश्चित रूप से गतिशीलता के विभिन्न कारकों को बढ़ावा देता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने शिक्षा के क्षेत्र को विकसित किया है। उत्तराखण्ड में शिक्षा का क्षेत्र संकुचित था और निम्न जाति के लोग को शिक्षा से वंचित थे, क्योंकि शिक्षा का संबन्ध धर्म से जोडा जाता था। किन्तु आज उत्तराखण्ड के गाँव–गाँव में शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत हो गया है और हर जाति के लोगों को समान शिक्षा व्यवस्था प्रदान की जा रही है। आधुनिकीकरण ने एक ओर जहाँ उत्तराखण्ड में आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रगति के मार्ग–प्रशस्त किये हैं वहीं दूसरी ओर आधुनिकता के नाम पर अनुशासनहीनता तथा भष्टाचार को बढावा दिया है। आधुनिक शिक्षा का आधार वैज्ञानिक चिंतन है इसलिए इसके द्वारा समतामूलक एंव विकासोन्मुखी समाज को बढावा मिलना बिल्कुल स्वाभाविक है। आधुनिक शिक्षा ने सामाजिक गतिशीलता का एक उत्प्रेरक के रूप में काम किया है।

### 4.5.4 पश्चिमीकरण

सामाजिक परिर्वतन की अनेक प्रकियाओं में पश्चिमीकरण एक प्रमुख प्रकिया है। पश्चिमीकरण की प्रकिया के द्वारा उत्तराखण्ड में होने वाले परिर्वतनों को व्यक्त किया जा सकता है जो पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रभाव के कारण उत्पन्न हुऐ हैं। पश्चिमीकरण एक चेतन तथा अचेतन दोनों ही प्रकारकी प्रकिया है, इसका अभिप्राय यह है कि पश्चिमी समाज की कुछ विशेषताओं को लोग चेतन रूप में जानबूझकर अपना रहे हैं वहीं पश्चिमी समाज की अनेक विशेषताओं को समाज सहज रूप से बिना सोचे समझे भी अपना रहा है। पश्चिमीकरण का समाज पर धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों ही प्रकार का प्रभाव पड़ा है। पश्चिमीकरण की संस्कृति से जहाँ एक ओर सकारात्मक परिर्वतनों का जन्म हुआ वही नकारात्मक तथा हानिकारक प्रभाव भी पडे हैं। पश्चिमीकरण परिर्वतन की उस प्रकिया का द्योतक है जो भारत के साथ ही उत्तराखड के जनजीवन, समाज व संस्कृति के विभिन्न पक्षों में उस पश्चिमी संस्कृति के सर्म्पक में आने के फलस्वरूप उत्पन्न हुई जिसे अंग्रेजी शासक अपने साथ लाये थे और उसके पश्चात से हम निरंतर अनेक बातों के लिए पश्चिम का अनुकरण कर रहे हैं। पश्चिमीकरण की प्रकिया का प्रचलन इस बात का सबूत है कि उत्तराखण्ड में सामाजिक गतिशीलता की गति तेज हुई है। इन दोनों प्रकियाओं में सामुहिक गतिशीलता का प्रमाण मिलता है। लोग अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए बेरोक–टोक प्रयास कर रहे हैं।

### 4.5.5 पलायन

औद्योगीकरण एंव यातायात के विकास की सुविधाओं ने प्रवास की प्रकिया को काफी तेज कर दिया है। एक लम्बे समय तक उत्तराखण्ड के लोग अपने गाँव की सीमा के अंदर ही जीवन निर्वाह करते थे, गाँव के बाहर की दुनिया की वे मात्र कल्पना ही कर सकते थे, स्वाभाविक रूप से गाँव की सीमा के अन्दर रहने वाले लोगों के बीच गतिशीलता नगण्य रही होगी। उत्तराखण्ड की कुल आबादी के लगभग 40 प्रतिशात लोग अपने जिले के बाहर प्रवास करते हैं। अपनी इच्छा के मुताबिक कोई भी व्यक्ति भारत के किसी भी कोने में आ–जा सकता हैं। प्रवास की नई प्रवृति ने जीवन

में आगे बढ़ने का रास्ता प्रशस्त कर दिया है। व्यक्ति गाँव से निकलकर बड़े नगरो या शहरों में जाकर अपने जीवन का सर्वांगीण विकास कर रहा है।

### 4.5.6 कानूनी एंव संवैधानिक अधिकार व सुविधाऐं

भारतीय संविधान में हर किसी को समान रूप से आगे बढ़ने का हक प्रदान किया गया है। जाति, धर्म, लिंग एंव जन्म स्थान के आधार पर सभी प्रकार के भेद–भाव को भारतीय संविधान में गैर कानूनी करार कर दिया गया। पिछड़ी जाति व निम्न जाति के लोगो के लिए निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई व शिक्षा संस्थानों में अध्ययन एंव नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था कर दी गयी है, जिससे लाखों लोगों को विकास की दौड़ में आगे निकलने का विशेष अवसर प्राप्त हो गया है। उत्तराखण्ड की कई जन जातियों को भी इसका फायदा मिला है।

## 4.6 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का अर्थ

आधुनिकीकरण परम्परा के स्थान पर नवीनता का विकास और स्पष्ट रूप से यह कह सकते हैं कि जब परम्परागत जीवन–शैली के स्थान पर आधुनिक तत्वों के विकास की प्रकिया प्रारम्भ हो जाती है तो इसे आधुनिकीकरण कहा जाता है।आधुनिकीकरण सामाजिक परिर्वतन की एक प्रकिया है। जिसका समाज या सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। आज सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में आधुनिकीकरण के लक्षणों को देखा जा सकता है। आधुनिकीकरण सामाजिक परिर्वतन की वह प्रकिया है जिसका समाज पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार का प्रभाव पड़ा है। आधुनिकीकरण के कारण समाज में ऐसे परिर्वतन हुए हैं जिनसे समाज में नकारात्मक परिर्वतन भी हुए हैं तथा समाज में विखण्डन हुआ है। वास्तव में आधुनिकीकरण सामाजिक परिर्वतन की वह प्रकिया है जिसने समाज में सर्वाधिक परिर्वतनों को जन्म दिया है।

### 4.6.1 आधुनिकीकरण की परिभाषाऐं

**प्रोफेसर एम.एन.श्रीनिवास** –*'' किसी गैर पश्चिमी देश में एक पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिर्वतन का नाम ही आधुनिकीकरण है।''*

**डा. एस.सी.दुबे** –*''आधुनिकीकरण एक प्रकिया है जो परम्परागत समाज में प्रौद्योगिकी पर आधारित समाज की ओर अग्रसर होती है।''*

**प्रोफेसर योगेन्द्र सिंह** – *'' आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है, यह लक्षण अतिमानवता से सम्बन्धित होने के साथ सजातीय और वैचारिक आधार पर परे होते हैं।''*

**आईजैनस्टाटँ** – *'' ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिकीकरण एक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एंव राजनैतिक व्यवस्थाओं की और परिर्वतन की प्रकिया है जो 17वीं से 19वीं शताब्दी तक पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका और 20वीं शताब्दी तक दक्षिणी अमेरिका, ऐशियाई व अफ्रीकी देशों में विकसित हुई।''*

### 4.6.2 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण की विशेषताऐं

उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण की विशेषताऐं को अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

#### 4.6.2.1 औद्योगीकरण

आधुनिकीकरण की प्रकिया के परिणाम स्वरूप बड़े–बड़े उद्योगों का विकास होने लगता है।

#### 4.6.2.2 नगरीकरण

जब बड़े–बड़े उद्योग विकसित होते हैं तो नगरीकरण की प्रकिया जन्म लेती है। उद्योगों की स्थापना के परिणाम स्वरूप नगरों की जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगती है जो नगरीकरण को और बढ़ावा देती है।

#### 4.6.2.3 शिक्षा का महत्व

आधुनिकीकरण की एक विशेषता शिक्षा का महत्व भी है जिससे कि शिक्षा का विकास होता है इसमें परम्परागत शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा का तेजी से विकास होता है।

#### 4.6.2.4 नवीन प्रौद्योगिकी

उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण की प्रकिया के परिणामस्वरूप ना केवल औद्योगीकरण तथा नगरीकरण को भी बढ़ावा मिला है वरन् नवीन प्रौद्योगिकी का भी विकास हुआ है।

#### 4.6.2.5 विज्ञान को बढ़ावा

आधुनिकीकरण का एक और लक्षण विज्ञान तथा वैज्ञानिक उपकरणों को बढ़ावा मिलना है। इस प्रकिया के कारण समाज में विज्ञान का महत्व बढ़ जाता है।

#### 4.6.2.6 विभेदीकरण

आधुनिकीकरण विभेदीकरण को भी विकसित करता है, विभिन्न आधारों पर समाज अनेक वर्गों में बँट जाता है।

#### 4.6.2.7 परम्परात्मकता का ह्रास

आधुनिकीकरण की एक विषेषता यह भी है कि इससे जो कुछ परम्परागत है उसका महत्व कम हो जाता है और उसके स्थान पर नवीनता का विकास होता है।

#### 4.6.2.8 श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण

आधुनिकीकरण की एक विशेषता यह भी है कि इससें श्रम विभाजन तथा विशेषीकरण को भी बढ़ावा मिलता है।

#### 4.6.2.9 कार्य प्रणालियों का विकास

आधुनिकीकरण एक बहुआयामी सामाजिक परिर्वतन की प्रकिया है जिसके द्वारा परम्परागत मूल्यों, विचारों, कार्यविधियों के स्थान पर नवीन सामाजिक मूल्यों, अवधारणाओं तथा कार्य प्रणालियों का विकास होने लगता है।

### 4.6.3 आधुनिकीकरण के कारक

आधुनिकीकरण एक व्यापक तथा जटिल प्रकिया है जिसके लिए किसी एक कारक को उत्तरदायी नहीं माना जा सकता । इसके प्रमुखतः पांच अग्रांकित कारक उत्तरदायी हैं–

#### 4.6.3.1 शिक्षा

शिक्षा के अभाव में कोई भी परम्परागत समाज आधुनिकीकरण की प्रकिया से गुजर नहीं सकता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्यों में ज्ञान को बढ़ावा मिलता है और इसके द्वारा प्रौद्योगिकी की खोज को बढ़ाव मिलता है। ज्ञान और विज्ञान का प्रचार आधुनिकीकरण की प्रकिया के लिए आवश्यक शर्त है। यह व्यक्ति की समस्याओं को सुलझाने और भविष्य निर्माण में सहायक है।

#### 4.6.3.2 संचार

ज्ञान और विज्ञान बढ़ने से संचार के माध्यमों का विकास होता है और ज्ञान व विज्ञान का प्रचार–प्रसार होता है। आधुनिकीकरण को आगे बढ़ाने में टी0वी, मोबाइल, फोन व अखबारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

#### 4.6.3.3 पश्चिमीकरण

पश्चिमीकरण भी आधुनिकीकरण को बढ़ावा देने का एक कारक है। वह इस रूप में कि इसके कारण परम्परागत मूल्यों को बढ़ावा मिलता हैं।

#### 4.6.3.4 राष्ट्रवाद की भावना

आधुनिकीकरण की प्रकिया को बढ़ाने के लिए सभी लोगों के बीच राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा देना चाहिए। अगर लोग जातिवाद व क्षेत्रीयता की भावना को अपने अन्दर रखेंगे तो हमारा देश तरक्की नहीं कर सकेगा, इसलिए हम सभी लोगों को अपने अन्दर राष्ट्रवाद की भावना को उत्पन्न करना चाहिए।

#### 4.6.3.5 संस्कृतिकरण

आधुनिकीकरण के कारकों में एक प्रमुख कारक संस्कृतिकरण है। संस्कृतिकरण की प्रकिया के द्वारा परम्परागत कार्य विधियों के स्थान पर नवीन कार्य–विधियों को अपना लिया जाता है।

### 4.6.4 उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण का प्रभाव

आधुनिकीकरण एक विश्वव्यापी प्रकिया है, जिसका संबन्ध समस्त मानव जाति से है। उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण के चलते विसंगतियाँ भी दृष्टिगत हो रही हैं। आधुनिकीकरण एक सार्वभौमिक सांस्कृतिक प्रघटना है। यह केवल उत्तराखण्ड में ही नही अपितु पूरे भारत वर्ष में इसका प्रभाव देखा गया है।

#### 4.6.4.1 परिवार में परिर्वतन

उत्तराखण्ड में संयुक्त परिवार की प्रणाली प्रचलित थी, परन्तु औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रकिया ने उत्तराखण्ड के संयुक्त परिवारों को प्रभावित किया है. जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार विघटित होकर एकांकी परिवारों में बदल रहे हैं।

#### 4.6.4.2 विवाह में परिर्वतन

कुमाँऊ व गढ़वाल में बाल विवाह व विधवा विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया था किन्तु आधुनिकीकरण के परिणाम स्वरूप आज सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में पुरूष व महिलाओं का सम्पर्क बढ़ा है, जिसके चलते अन्तर्जातीय प्रेम विवाह में वृद्धि हुई है। कन्या दान का आदर्श टूटा है और बाल–विवाह में कमी आयी है साथ ही विधवा पुर्नविवाह को कानूनी मान्यता मिल गई है।

#### 4.6.4.3 शिक्षा में परिर्वतन

आधुनिकीकरण की प्रकिया ने शिक्षा के क्षेत्र को विकसित किया है। उत्तराखण्ड में शिक्षा का क्षेत्र संकुचित था और निम्न जाति के लोगों को शिक्षा से वंचित कर दिया जाता था और शिक्षा को धर्म से जोड़ा जाता था। आज के समय में सभी जाति के लोगों को समान शिक्षा दी जाती है।

#### 4.6.4.4 धार्मिक जीवन में परिर्वतन

आधुनिकीकरण की प्रकिया से धर्म को आघात लगा है । उत्तराखण्ड में धार्मिक अन्धविश्वास एंव सामाजिक कुरीतियां व्याप्त थीं । धर्म की आड़ में छूआ–छूत को बढ़ावा दिया जाता था। पश्चिमी शिक्षा प्रणाली के परिणाम स्वरूप इन सामाजिक बुराइयों को दूर किया गया। राजा रामोहन राय, महात्मा गाँधी, स्वामी विवेकानन्द आदि दार्शनिकों ने इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्तमान समय में हर घटना का कारण धर्म को ना मानकर तार्किक दृष्टिकोण से समझा जाता है।

#### 4.6.4.5 आर्थिक जीवन में परिर्वतन

उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरणी की प्रकिया ने आर्थिक जीवन की प्रक्रिया को भी प्रभावित किया है। विज्ञान, प्रौद्योगिकी, उद्योग–धन्धे और यातायात तथा संचार के साधन विकसित हो जाने से नगरों का विकास हुआ । यहाँ बड़े–बड़े उद्योग–धन्धे लगाये गये, इन उद्योग–धन्धों में कार्य करने के लिए गाँव के लोग शहरों में आ गये। इस प्रकार स्थानीय गतिशीलता में वृद्धि हुई साथ ही गाँव का परम्परागत व्यवसाय चरमरा गया जिससे गाँवों में निर्धनता, बेरोजगारी एंव भुखमरी बढ़ी है।

### 4.6.4.6 राजनीतिक जीवन में परिर्वतन

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने उत्तराखण्ड के राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। परम्परागत उत्तराखण्ड में गाँव–पंचायत शक्तिशाली होती थी जिसका अध्यक्ष गाँव प्रधान या मुखिया होता था। शासन व्यवस्था पर धर्म का प्रभाव था किन्तु आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के परिणमस्वरूप प्रजात्रंत और धर्म निरपेक्षता का भारतीय राजनीति व उत्तराखण्ड की राजनीति में प्रवेश हुआ। वर्तमान काल में ग्राम पंचायत के अध्यक्ष का पद वंशानुगत नहीं हैं जैसा कि पहले था। आज भारत में प्रजात्रंत और धर्म निरपेक्ष राज्य चल रहा है।

### 4.6.4.7 जाति व्यवस्था में परिर्वतन

परम्परागत कुमाँऊ व गढ़वाल में जाति–व्यवस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विज्ञान का महत्व बढ़ा और धर्म का प्रभाव कम हो गया। इस प्रकार से जाति व्यवस्था का महत्व कम हुआ हैं। औद्योगीकरण, नगरीकरण ,जन संचार के साधनों के विकास से जाति व्यवस्था के प्रतिबंन्ध जो परम्परागत थे कमजोर पड़ गये हैं।

1. सामाजिक परिर्वतन व आधुनिकीकरण क्या है? स्पष्ट कीजिए।
2. उत्तराखण्ड में आधुनिकीकरण के प्रभाव को बतलाइये।

## 4.7 सारांश

सामाजिक परिर्वतन ऐतिहासिक और आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की विशेषता रही है। कहीं पर इसकी गति त्रीव तो कही पर मन्द रही है। समूह के आकार में परिर्वतन, अर्थव्यवस्था में परिर्वतन, सामाजिक संरचना का रूपान्तरण, विज्ञान का विकास, धार्मिक विश्वासों का महत्व, युद्ध, आपदा इत्यादि ऐसे तत्व हैं जो इन परिर्वतनों से सम्बन्धित हैं। समाज के प्रत्येक पहलू में परिर्वतन हुए हैं। व्यवहार में, जीवन शैली में या सूचना प्रौद्योगिकी में सामाजिक परिर्वतन भौतिक और अभौतिक संस्कृति में होने वाले परिर्वतनों को भी इसके क्षेत्र में सम्मिलित करते हैं। उपरोक्त कथनों से यह कहा जा सकता है कि परिर्वतन एक व्यापक प्रकिया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों में होने वाले किसी भी प्रकार के परिर्वतन को सामाजिक परिर्वतन कहा जा सकता है। यह विचलन स्वंय प्रकृति के द्वारा या मानव समाज द्वारा योजनाबद्ध रूप में हो सकता है। समाज के किसी विशेष पक्ष में यह हो सकता है, या समाज के समस्त ढाँचे में आ सकता है। यह किसी ना किसी रूप में हमेशा चलने वाली प्रकिया है।परिर्वतन प्रत्येक समाज की आवश्यकता है और यह प्रत्येक समाज में सामाजिक विकास की प्रकिया से उत्पन्न होती

है। यह प्रकिया समाजों की संरचना और क्रियाकलापों में बदलाव लाती है। एक अलग राज्य के रूप में स्थापित होने के पश्चात उत्तराखण्ड में कई परिर्वतनों का प्रदर्शन हुआ। कुमाँऊ और गढ़वाल मण्डलों में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिर्वतन हुए हैं,जिसने समाज के कई पहलुओं को प्रभावित किया है अर्थात उनमें परिर्वतन हुआ है। उततराखण्ड में प्रगति और वृद्धि कई गाँवों और जिलों में देखने को मिली है। पर्यटन ने एक विशाल रूप लेकर प्रदश्ष की आर्थिक स्थिति को सुधारा है। शिक्षा ने लोगों में जागरूकता एंव सभ्यता प्रदान की है। उत्तराखण्ड की 71 प्रतिशत साक्षरता इस बात का साक्ष्य है कि प्रदेश में उन्नति हुई है।

उत्तराखण्ड में सामाजिक ढाँचे में विसंगतियाँ भी दृष्टिगत हो रही हैं जैसे– संयुक्त परिवारों का टूटना व वृद्धों के प्रति अनादर की भावना का बढ़ना, नैतिकता का पतन प्रायः देखने में आ रहा है। यहाँ समाज में भौतिकवाद तथा विलासिता बढ़ती नजर आ रही है, और व्यक्तिवाद पनप रहा है, फास्टफूड, रेस्टोरेन्ट, क्रेडिट कार्ड, मोबाइल फोन, इन्टरनेट, टी.वी चैनलों पर अश्लीलता परोसने जैसी नई संस्कृति विकसित हो रही है। गाँवों में राजनीतिकरण की प्रकिया पंचायती राज की संस्थाओं से और गतिशील हो गई है। विवाह और सम्पत्ति के हस्तान्तरण के मामलों में न्यायिक सुधार से परिवार के पारम्परिक ढाँचे का आधार प्रभावित हुआ है। उत्तराखण्ड के दोनों क्षेत्रों में चाहे व पहाड़ी क्षेत्र हो या मैदानी, परिर्वतन के परिणाम दिखाई पड़े हैं।

## 4.8 तकनीकी शब्दावली

**1. पश्चिमीकरण** –पश्चिमी देशों का अनुकरण
**2. आधुनिकीकरण**–आधुनिक ज्ञान–विज्ञान,तर्क एवं विवके पर आधारित मूल्यों से निर्मित व्यवस्था।

## 4.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 4.4 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 4.3.2.1 से 4.3.2.7
खण्ड 4.4 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 4.4.1 से 4.4.6
खण्ड 4.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 का उत्तर संपूर्ण इकाई के आधार पर लिखें
खण्ड 4.6 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 4.6.4.1 से 4.6.4.7

## 4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची


1. श्रीनिवास, एम.एन; सोषल चेंज एन इण्डिया
2. सिंह, वी.एन; आधुनिकता एंव नारी सषक्तिकरण
3. प्रसाद, अवध; गावों में सामाजिक, आर्थिक एंव राजनैतिक परिर्वतन
4. पाण्डेय, पी.एन; ग्रामीण विकास एंव संरचनात्मक परिर्वतन


## 4.11 सहायक / उपयोगी ग्रंथावली


1. एम.एन.श्रीनिवास : सोशल चेजं इन मॉडर्न इण्डिया
2.योगेन्द्र सिंह : मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन


## 4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक परिर्वतन से आप क्या समझते है?इसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए एंव उत्तराखण्ड में इसके परिणामों का वर्णन कीजिए।

## इकाई–पाँच : उत्तराखण्ड की सामाजिक समस्याऐं


5.1 प्रस्तावना

5.2 इकाई के उद्देश्य

5.3 सामाजिक समस्या अर्थ एवं विशेषताऐं

5.4 सामाजिक समस्याओं के प्रकार एवं वर्गीकरण

5.4.1 हैरल्ड फैल्प्स का वर्गीकरण

5.4.2 सैमुएक किंग का वर्गीकरण

5.4.3 के0 डी0 भट्ट का वर्गीकरण

5.5. उत्तराखण्ड में विभिन्न सामाजिक समस्याऐं

5.5.1. पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

5.5.1.1 पारिवारिक विघटन

5.5.1.2 पारिवारिक तनाव

5.5.1.3 परिवार परित्याग

5.5.1.4 संयुक्त परिवार का विघटन

5.5.2. वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

5.5.2.1 अपराध

5.5.2.2 मद्यपान तथा मादक–द्रव्य–व्यसन

5.5.2.3 वेश्यावृत्ति

5.5.2.4 यौन – विचलन और एड्स की समस्या

5.5.3 सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

5.5.3.1 जातिवाद

5.5.3.2 क्षेत्रवाद

5.5.3.3 आतंकवाद

5.5.3.4 लोक जीवन में भ्रष्टाचार

5.5.3.5 निर्धनता

5.6 सारांश

5.7 तकनीकी शब्दावली

5.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.10 सहायक / उपयोगी

## 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

## 5.1 प्रस्तावना

सामाजिक समस्या उन परिस्थितियों अथवा दशाओं का नाम है जिन्हें समाज हानिकारक मानता है तथा जिनमें सुधार की समाज को आवश्यकता होती है। सामाजिक समस्या का तात्पर्य उन परिस्थितियों अथवा दशाओं से है जिन्हें एक समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा अपने सुस्थापित नियमों, सामाजिक मूल्यों तथा समूह–कल्याण के विरूद्ध माना जाता है। जब समाज में समस्याऐं वैयक्तिक अभियोजन में गम्भीर बाधा उत्पन्न करके समाज के सन्तुलन को बिगाड़ देती हैं तभी उसको हम सामाजिक विघटन कहते हैं।

कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और कुछ ऐसी भी होती हैं जिनके लिए कोई निश्चित माप नहीं होता है। अपराध, तलाक, वेश्यावृत्ति, अवैध यौन–सम्बन्ध, अस्पृश्यता, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार, बंधुआ–श्रमिक आदि ऐसी समस्याऐं हैं। शारीरिक रोग तथा विकलांगता आदि जैविकीय समस्याओं का उदाहरण हैं। मानसिक दुर्बलता, मद्यपान, नशीले पदार्थों का सेवन, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या तथा वैयक्तिक अनुकूलन में कमी जैसी समस्याऐं जैविक–मनोवैज्ञानिक समस्याऐं होती हैं। निर्धनता, बेरोजगारी, बाल–श्रम, आर्थिक शोषण आदि कुछ प्रमुख आर्थिक समस्याऐं हैं।

विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की समस्याऐं होती हैं। प्रत्येक समूह तथा समाज में अपनी–अपनी समस्याऐं होती हैं इनका प्रभाव विशेष समूहों तक ही सीमित रहता है, अनेक समस्याऐं एक बड़ी सीमा तक स्थानीय दशाओं से प्रभावित होती हैं। जातिवाद, भ्रष्टाचार, अपराध, श्वेतवसन–अपराध, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, आतंकवाद तथा निर्धनता आदि इसी तरह की समस्याएँ राष्ट्रीय हैं।इस वैश्वीकरण के युग में देशों में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय दशाऐं भी हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करती हैं, बहुत सी समस्याऐं ऐसी हैं जिसका विस्तार अधिक या कम मात्रा में पूरे विश्व में देखने को मिलता है। यह आर्थिक और सामाजिक दोनों जीवन को प्रभावित करता है, युद्ध, आतंकवाद, मादक पदार्थों का सेवन, अन्तर–पीढी संघर्ष, युवा–सक्रियता आदि समस्याऐं लगभग सभी देशों की सामान्य समस्याऐं हैं।

## 5.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य उत्तराखण्ड की विभिन्न सामाजिक समस्याओं का परिचय कराना हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- सामाजिक समस्या का अर्थ एवं विशेषताऐं
- सामाजिक समस्याओं के प्रकार एवं वर्गीकरण
- उत्तराखण्ड में विभिन्न सामाजिक समस्याऐं

## 5.3 सामाजिक समस्या : अर्थ एवं विशेषताएँ

सामाजिक समस्या वह अवस्था हैं जबकि एक समाज–विशेष के सांस्कृतिक मापदण्ड के अनुसार सामाजिक जीवन का कोई पक्ष या समाज के बहुतेरे सदस्यों का कोई व्यवहार अपने लोकप्रिय या स्वस्थ स्वरूप को खोकर विकृत या अवांछनीय रूप धारण कर लेता है और उस रूप में वह समाज के लिए अहितकर परिणामों को उत्पन्न करता है। सामाजिक समस्या का सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष के व्यवहार से नहीं अपितु समाज के बहुत से सदस्यों के किसी दुर्त्यवहार, कठिनाई, बुरे या अवांछनीय क्रियाकलाप से होता है, कौन सा व्यवहार बुरा या अवांछनीय है, इसका अन्तिम निर्णय समाज में प्रचलित सांस्कृतिक मापदण्ड जैसे मूल्य, आदर्श, नैतिक, नियम आदि के द्वारा ही होता है, इसलिए यह जरूरी नहीं कि एक समाज की कोई समस्या दूसरे किसी समाज में भी समस्या कहलाएगी,, प्रत्येक समाज की अपनी–अपनी समस्याऐं होती हैं परन्तु अधिकतर समाजों में अनेक समान प्रकार की समस्याऐं भी पाई जाती हैं, प्रत्येक समाज का ढाँचा कुछ ऐसे नियमों और मूल्यों पर आधारित होता है जिनकी सहायता से उस समाज में रहने वाले व्यक्ति एक–दूसरे से अनुकूलन कर सकें और अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा कर सकें, कभी–कभी सामाजिक परिवर्तन की दशा में एक समाज के सदस्यों की आवश्यकताएँ तथा आकांक्षाऐं तो बदल जाती हैं लेकिन सामाजिक ढाँचे में इसके अनुरूप परिर्वतन नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप सामाजिक ढाँचे मे कुछ ऐसे अवरोध और तनाव पैदा हो जाते हैं जो सम्पूर्ण सामाजिक सन्तुलन को बिगाड़ देते हैं। संक्षेप में, सामाजिक अनुकूलन में बाधा डालने वाली दशाओं अथवा सामाजिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाली दशाओं को ही हम सामाजिक समस्याऐं कहते हैं। सामाजिक समस्या कोई वैयक्तिक घटना नहीं है, इसमें सामूहिकता का तत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक समस्याओं को हम सामाजिक समस्या नहीं कह सकते क्योंकि यह सामाजिक ढाँचे से सम्बन्धित नहीं हैं,जैसे– बाढ, भूकम्प, महामारी, सूखा इत्यादि। इसके विपरीत अपराध, भिक्षावृति, मद्यपान, छुआछूत अथवा वेश्यावृत्ति का सम्बन्ध एक विशेष सामाजिक संरचना से होने के कारण इन्हें हम सामाजिक समस्या के अर्न्तगत रखेंगें। विभिन्न विद्वानों ने इसी दृष्टिकोण से सामाजिक समस्या के अर्थ को परिभाषित किया है। **फुलर और मेयर्स के अनुसार**, *''सामाजिक समस्या वह स्थिति है जिसे अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा उन सामाजिक आदर्श नियमों के विचलन के रूप में देखा जाता है जिन्हें वे अपने लिए आवश्यक मानते हैं।''***लारेन्स फ्रेन्क ने बताया** कि, *''सामाजिक समस्या काफी अधिक संख्यक लोगों की कोई ऐसी कठिनाई या दुव्यवहार है जिसे कि हम दूर करना या सुधारना चाहते हैं।''* **सैमुएल किंग के शब्दों में**, ''सामाजिक समस्या उन परिस्थितियों अथवा दशाओं का नाम है जिन्हें समाज हानिकारक मानता है तथा जिनमें सुधार की समाज को आवश्यकता होती है।'' **पॉल मर्टन के अनुसार**, *''सामाजिक समस्या वह दशा है जो अनुचित रूप से एक बड़ी संख्या में व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करती है तथा जिसके बारे में यह समझा जाता है कि सामूहिक प्रत्यनों के द्वारा इसमें सुधार किया जा सके।''* **ग्रीन** ने सामाजिक समस्या को सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक नियमों के उल्लंधन के रूप में स्पष्ट किया है। *''सामाजिक समस्या ऐसी दशाओं की समग्रता है जिन्हें नैतिक आधार पर समाज में अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अनुचित समझा जाता है।''*

इन सभी परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक समस्या का तात्पर्य उन परिस्थितियों अथवा दशाओं से है जिन्हें एक समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा अपने सुस्थापित नियमों, सामाजिक मूल्यों तथा समूह–कल्याण के विरूद्ध

माना जाता है। जब समाज में समस्याऐं वैयक्तिक अभियोजन में गम्भीर बाधा उत्पन्न करके समाज के सन्तुलन को बिगाड़ देती हैं तभी उसको हम सामाजिक विघटन कहते हैं।

सामाजिक समस्या की उपर्युक्त प्रकृति के आधार पर इसकी प्रमुख विशेषताऐं निम्नांकित रूप से समझ सकते हैं–

1) सामाजिक समस्या की प्रकृति सामूहिक होती है। एक या एक से अधिक व्यक्तियों के पास्परिक अभियोजन में उत्पन्न होने वाली बाधा को सामाजिक समस्या नहीं कह सकते।

2) सामाजिक समस्या वह स्थिति है जिसे दूर करने में भलाई है।

3) सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो समुदाय में बहुत से व्यक्तियों के विचलित व्यवहारों अथवा समाज के आदर्श नियमों के उल्लंधन के रूप मे ंदेखने को मिलती है।

4) सामाजिक समस्या की अवधारणा का सम्बन्ध समाज के मूल्यों से है। मूल्यों में परिवर्तन होने के साथ सामाजिक समस्या के रूप में भी परिर्वतन हो जाता है। जिस प्रकार 'बाल विवाह' को पहले एक सामाजिक समस्या नहीं मानते थे परन्तु वर्तमान समय में मूल्य बदल जाने के कारण अब इसे उचित नहीं समझा जाता है।

5) प्राकृतिक अथवा जैविकीय क्षेत्र की समस्याओं को सामाजिक समस्या नहीं कह सकते क्योंकि सामाजिक समस्याऐं किसी विशेष सामाजिक संरचना से ही सम्बन्धित होती हैं।

6) सामाजिक समस्या की अवधारणा समाज कल्याण की धारणा से सम्बन्धित है। जागरूकता, नीति –निधारण तथा सुधार सामाजिक समस्या के वे चरण हैं जिनके द्वारा किसी समुदाय में इनका निवारण सम्भव होता है। कोई समाज जब कल्याण के प्रति सचेत होता है,तभी कुछ व्यवहारों को समस्या के रूप में देख सकते हैं अर्थात् उसका हल निकाल सकते हैं।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. सामाजिक समस्या का क्या अर्थ है ?
2. सामाजिक समस्या की प्रमुख विशेषताऐं बताए।

## 5.4 सामाजिक समस्याओं के प्रकार एवं वर्गीकरण

क्षेत्र के आधार पर सामाजिक समस्याओं की प्रकृति स्थानीय से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय तक हो सकती है। कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है और कुछ ऐसी भी होती हैं जिनके लिए कोई निश्चित माप नहीं होता है। कुछ समस्याऐं अस्थाई होती हैं जबकि अनेक समस्याऐं एक लम्बी अवधि तक सामाजिक जीवन को प्रभावित करती रहती हैं। **गिलिन तथा डिटमर** ने कहा है कि जहाँ वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं कम गम्भीर

होती हैं तथा सामान्य उपचार के द्वारा उनका समाधान किया जा सकता है, वहीं सामुदायिक और राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं एक लम्बे समय के लिए सम्पूर्ण समाज की प्रगति में बाधक बनी रहती हैं।

### 5.4.1 हैरल्ड फैल्प्स का वर्गीकरण

**फैल्प्स** के अनुसार प्रत्येक समाज में सामाजिक व्यवस्था तथा व्यक्तिगत व्यवहार से सम्बन्धित कुछ इस तरह के नियम बनाए जाते हैं जिनकी सहायता से व्यक्ति अपने समूह से अनुकूलन कर सके एवं समाज प्रगति के रास्ते पर आगे बढ़ सके। जब भी इन नियमों का प्रभाव कम होने लगता है तो समाज में अनेक प्रकार की असमानताऐं और कठिनाई पैदा होने लगती हैं। यही असमानताऐं विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं। इसी दृष्टिकोण से फैल्प्स ने सामाजिक समस्याओं को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया है।

(1) **सांस्कृतिक मूल्यों से उत्पन्न समस्याऐं –** कुछ गंभीर समस्याऐं समाज में उत्पन्न हो जाती हैं जो मूल्यों के प्रभाव को कम कर देती हैं और मूल्यों में भ्रम पैदा कर देती हैं, ऐसी समस्याऐं वैयक्तिक जीवन से लेकर पारिवारिक, सामुदायिक तथा सामाजिक जीवन को विघटित कर देती हैं। अपराध, तलाक, वैश्यावृत्ति, अवैध यौन–सम्बन्ध, अस्पृश्यता, सम्प्रदायवाद, भ्रष्टाचार, बंधुआ–श्रमिक आदि ऐसी समस्याऐं हैं।

(2) **जैविकीय समस्याऐं –** यह वे समस्याऐं है जो शारीरिक दोषों से सम्बन्धित होने के कारण व्यक्ति के सामाजीकरण में बाधाऐं पैदा करती हैं। शारीरिक रोग ,विकलांगता आदि जैविकीय समस्याओं के उदाहरण हैं। ये वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित तो होती ही है परन्तु इसका असर समाज के विभिन्न अंशों में अलग – अलग तरह से प्रभावित होता है।

(3) **जैविक–मनोवैज्ञानिक समस्याऐं –** यह मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न होती हैं तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी दोष उत्पन्न करके सामाजिक विकास में बाधक बन जाती हैं। मानसिक दुर्बलता, मद्यपान, नशीले पदार्थों का सेवन, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, आत्महत्या तथा वैयक्तिक अनुकूलन में कमी जैसी समस्याऐं इससे सम्बन्धित हैं। ये समस्याऐं समाज की प्रगति एवं विकास को प्रभावित करती हैं।

(4) **आर्थिक समस्याऐं –** बहुत सारी समस्याऐं हमारे आर्थिक जीवन में उत्पन्न होती हैं, इसका सम्बन्ध आर्थिक साधनों के अभाव से है। इस प्रकार निर्धनता, बेरोजगारी, बाल–श्रम, आर्थिक शोषण आदि कुछ प्रमुख आर्थिक समस्याऐं हैं।

### 5.4.2 सैमुएक किंग का वर्गीकरण

इन्होंने सामाजिक समस्याओं को दो भागों में विभाजित किया है, यह निम्न प्रकार से हैं –

(1) **स्पष्ट समस्याऐं –** समाज में कुछ समस्याऐं ऐसी होती हैं जिन्हें हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं और माप भी की जा सकती है, निर्धनता, अपराध, जनसंख्या–वृद्धि, बेकारी आदि ऐसी समस्याऐं हैं। आर्थिक समस्याओं को विभिन्न तरह से देखा जा सकता है, अर्थात् इनकी माप भी की जा सकती है।

(2) **अप्रकट समस्याऐं –** अप्रकट समस्याऐं वे समस्याऐं होती हैं जो छिपे रूप से विद्यमान होती हैं और इनकी गम्भीरता और दुष्परिणामों की कोई निश्चित माप करना बहुत कठिन होता है। जैसे – पारिवारिक तनाव, टूटे परिवार, जातिवाद, प्रजातिवाद, श्वेतवसन–अपराध, भ्रष्टाचार, क्षेत्रवाद तथा माद्रक द्रव्य व्यसन आदि इसी तरह की समस्याऐं है। यह समस्याऐं समाज को धीरे – धीरे खोखला कर देती हैं।

### 5.4.3 के0 डी0 भट्ट का वर्गीकरण

समाज मे कई प्रकार की समस्याओं का अध्ययन करते समय, भट्ट ने इन सामाजिक समस्याओं को चार भागों में विभाजित किया है।

(1) **क्षेत्रीय समस्याऐं –** विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न प्रकार की समस्याऐं होती हैं। जिन क्षेत्रों में लोग बदलती हुई दशाओं से अनुकूलन नहीं कर पाते अथवा कुछ विशेष परिस्थतियों में एक दूसरे को सन्देह की निगाह से देखने लगते हैं वहाँ अनेक क्षेत्रीय समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे – क्षेत्रवाद, दहेज प्रथा, परम्परावादिता तथा सम्प्रदायवाद इस वर्ग के उदाहरण हैं।

(2) **स्थानीय समस्याऐं –** प्रत्येक समूह तथा समाज में अपनी–अपनी समस्याऐं होती हैं इनका प्रभाव विशेष समूहों तक ही सीमित रहता है, अनेक समस्याऐं एक बड़ी सीमा तक स्थानीय दशाओं से प्रभावित होती हैं। उदाहरणार्थ – जाति–संघर्ष, धार्मिक–अन्धविश्वासों से उत्पन्न तथा पारिवारिक तनाव भी इसके अन्तर्गत आते हैं।

(3) **राष्ट्रीय समस्याऐं –** अनेक समस्याओं का फैलाव पूरे राष्ट्र में देखने को मिलता है। ऐसी समस्याऐं सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में सबसे अधिक गम्भीर होती हैं। यह समस्याऐं – जातिवाद, भ्रष्टाचार, अपराध, श्वेतवसन–अपराध, बेरोजगारी, जनसंख्या–वृद्धि, आतंकवाद तथा निर्धनता आदि इसी तरह की समस्याएँ हैं।

(4) **अन्तर्राष्ट्रीय समस्याऐं –** यह युग वैश्वीकरण का युग है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय दशाऐं हमारे राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करने लगी हैं, बहुत सी समस्याऐं ऐसी हैं जिसका विस्तार अधिक या कम मात्रा में पूरे विश्व में देखने को मिलता है। यह आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रभावित करता है, युद्ध, आतंकवाद, मादक पदार्थो का सेवन, अन्तर–पीढी संघर्ष, युवा–सक्रियता आदि समस्याऐं लगभग सभी देशों की सामान्य समस्या हैं। समाज में अनेक समस्याऐं ऐसी भी पायी जाती हैं जिन्हें हम किसी विशेष वर्ग में सम्मिलित नहीं कर सकते, उदाहरण के लिए, युद्ध, सांस्कृतिक कारणों से भी हो सकता है और आर्थिक कारणों से भी, वर्तमान भारतीय समाज में जातिवाद, दहेज प्रथा, अस्पृश्यता, महिलाओं का शोषण, संयुक्त परिवारों का विघटन, वेश्यावृत्ति, युवा–तनाव, असन्तुलित–औद्योगीकरण और भ्रष्टाचार जैसी समस्याऐं सम्पूर्ण जन–जीवन को विषाक्त कर रहीं हैं। हमारी किसी भी समस्या का रूप चाहे

सामाजिक हो, राजनीतिक या धार्मिक अथवा आर्थिक, नियोजित प्रयत्नों के द्वारा इनका समाधान करने के स्थान पर लोग अनेक विश्वासों, धर्म–कर्म की धारणा के द्वारा इनके औचित्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। यहाँ की समस्याऐं केवल धार्मिक, सामाजिक ,आर्थिक अथवा राजनीतिक ही नहीं हैं बल्कि एक ही समस्या पर धर्म, सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक असन्तुलन का संयुक्त प्रभाव देखने को मिलता है।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. हैरल्ड फैल्प्स का सामाजिक समस्याओं का वर्गीकरण क्या है ?

## 5.5.0 उत्तराखण्ड में विभिन्न सामाजिक समस्याऐं

सामाजिक समस्याओं का अध्ययन स्वयं में एक जटिल विषय है। सामाजिक समस्या एक विचलित व्यवहार है जो समाज द्वारा अमान्य होता है और समाज को इस सीमा तक प्रभावित करता है कि उसके प्रति समुदाय की सहनशीलता की सीमा समाप्त हो जाती है, सामाजिक समस्या का तात्पर्य उन परिस्थितियों अथवा दशाओं से है जिन्हें एक समुदाय के अधिकांश व्यक्तियों के द्वारा अपने सुस्थापित नियमों, सामाजिक मूल्यों तथा समूह कल्याण के विरूद्ध माना जाता है और इसलिए इनका निराकरण यद्यपि सामाजिक सन्तुलन में उत्पन्न होने वाली बाधाऐं हैं, लेकिन फिर भी कोई समाज ऐसा नहीं होता जिसमें समस्याऐं बिल्कुल भी न पायी जाती हों, उत्तराखण्ड में भी कई सामाजिक समस्याऐं हैं, जो भारत के अन्य राज्यों में भी पाई जाती हैं। अन्तर केवल समस्याओं की मात्रा और गम्भीरता का होता है। प्रत्येक समुदाय अपनी समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयत्न करता है। क्योंकि उत्तराखण्ड को एक नए राज्य के रूप में केवल ग्यारह वर्ष हुए है, तो इसकी अपनी राजनीतिक व सामाजिक समस्याऐं हैं। उत्तराखण्ड के दो मण्डल है – कुमाँऊ मण्डल एवं गढ़वाल मण्डल, इन दोनों मण्डलों की अपनी – अपनी सामाजिक और भौगोलिक समस्याऐं हैं । पहाड़ी और मैदानी क्षेत्रों से बना हुआ उत्तराखण्ड 'देव–भूमि' के नाम से देश भर में प्रसिद्ध है। उत्तराखण्ड में पायी जाने वाली समस्याओं को निम्नलिखित विवेचना से हम समझ सकते हैं और उन समस्याओं के हल के लिए अपने कदम वैयक्तिक या सामूहिक तौर पर बढ़ा सकते हैं। हम भारतीय हैं अर्थात् अपने समाज, अपने देश की उन्नति के लिए, एक सुखमय जीवन जीने के लिए, यह हमारा कर्तव्य है कि हम इसके निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान दें।

### 5.5.1.0 पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

उत्तराखण्ड की अनेक सामाजिक समस्याओं को हम विभाजित कर सकते हैं, जिससे इनको समझने में सरलता होगी।

### 5.5.1.1 पारिवारिक विघटन

पारिवारिक विघटन वह अवस्था है जिसमें परिवार के सदस्यों में हितों, उद्देश्यों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं की एकता के अभाव में उनमें प्रेम, सहयोगिता तथा आत्म–त्याग की भावनाऐं नहीं हैं जिसके कारण वह परिवार अपने प्रमुख कार्यों को करने में असफल है और पारिवारिक जीवन में सुख नहीं है। एक परिवार रक्त सम्बन्ध, विवाह या गोद लेने के

सम्बन्धों से बंधा हुआ पति–पत्नी, भाई–बहन, माता–पिता, लड़का–लडकी आदि का धनिष्ठ समूह होता है। इस समूह के सदस्य पारिवारिक स्वार्थ एवं कर्तव्य–बोध के आधार पर समान होने की चेतना या भवना रखते हैं, तभी पारिवारिक व्यवस्था या संगठन बना रहता है। उत्तराखण्ड में ग्रामीण क्षेत्र की संख्या नगरीय क्षेत्र से अधिक है और आज भी यहाँ रूढ़िवादिता पायी जाती है, एक साधारण उदाहरण यह है कि यदि कोई हिन्दू लड़का अन्य जाति या धर्म में विवाह कर ले तो सम्पूर्ण पारिवारिक जीवन पर असर होता है। परिवार के सदस्यों का स्वभाव अलग हो जाता है, और सांस्कृतिक भिन्नताओं के आधार पर परिवार के सदस्यों तथा बहू के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति की संभावना तब अधिक होती है जब लड़का माता–पिता की इच्छा के विपरीत विवाह करे। वर्तमान युग में इस परिस्थिति में धीरे–धीरे बदलाव आ रहा है। अब लोगों की सोच कई कारकों से प्रभावित होती है और कट्टर रूढ़ीवादिता में कमी आयी है फिर भी परिवार विघटन एक महत्वपूर्ण समस्या है। आन्तरिक रूप में भी यदि परिवार के सदस्य एक दूसरे के साथ नहीं तो, यह भी पारिवारिक विघटन है। आधुनिक युग में सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ पर्याप्त रूप में बदल गई हैं और कुछ ऐसे कारक क्रियाशील हैं जिनके कारण आज का परिवार विघटित हो रहा है।

### 5.5.1.2 पारिवारिक तनाव

पारिवारिक तनाव पारिवारिक विघटन का प्रमुख कारण है। **इलियट तथा मैरिल** के अनुसार ''पारिवारिक तनाव से हमारा तात्पर्य किसी भी ऐसी संघर्षात्मक स्थिति से है जो इसके सदस्यों, विशिष्ट रूप से पति–पत्नी के बीच विरोध अभिवृत्तियों को उत्पन्न करती हैं।'' पारिवारिक तनाव से तात्पर्य पति–पत्नी के आपसी मधुर सम्बन्धों में तनाव से है। पारिवारिक तनाव ऐसी स्थिति है जब पति–पत्नी में किसी विषय को लेकर आपस में विरोध होता है। उत्तराखण्ड में भी कई परिवारों में पारिवारिक तनाव होता है, इसके कारण व्यक्ति का स्वभाव, धार्मिक विचारों में भिन्नता, यौन–असन्तुष्टि, मानसिक बिमारी, निर्धनता, व्यापार में घाटा, अस्थायी व्यवसाय की अधिकता,योग्यतानुसार रोजगार न मिलना, महत्वाकांक्षा, सांस्कृतिक–पृष्ठभूमि में अन्तर इत्यादि।

### 5.5.1.3 परिवार परित्याग

उत्तराखण्ड में ही नहीं परन्तु पूरे विश्व के समस्त परिवारों में पूर्ण सामंजस्य नहीं पाया जाता है। सभी परिवारों मे कुछ न कुछ कमियाँ तो होती ही हैं। इन कमियों को दूर करने के लिए पति–पत्नी को एक दूसरे को समझने का प्रयास करना चाहिए, जो पति–पत्नी एक दूसरे की भावनाओं को समझते हैं, एक–दूसरे के साथ सहयोग एवं सामंजस्य से रहते हैं, उनमें पारिवारिक तनाव कम होता है, परित्याग में पति–पत्नी में से कोई एक परिवार को छोड़कर दूसरी जगह चला जाता है। इसके प्रमुख कारण शिक्षा की कमी, आर्थिक कमी, असन्तुष्ट सम्बन्ध, नैतिक पतन, तलाक से बचाव, कानूनों की जानकारी न होना आदि है। परित्याग के पश्चात् सबसे अधिक मानसिक पीढ़ा बच्चों को होती है, कुमाँऊ और गढ़वाल क्षेत्रों  में अधिकांशतः महिला को ही अपने मायके जाना होता है। एक स्त्री के सम्मान को इससे बहुत ठेस पहुँचती है। परित्याग से विभिन्न सामाजिक समस्याओं का उदय होता है। जैसे बाल अपराधों में वृद्धि, बच्चों में आवारापन आदि।

### 5.5.1.4 संयुक्त परिवार का विघटन

भारतीय समाज में एक आधारभूत संस्था संयुक्त परिवार प्रणाली थी, इस परिवार प्रणाली का आजकल विघटन होते जा रहा है। संयुक्त परिवार में सम्मिलित–सम्पत्ति और सम्मिलित–निवास होता है, पारस्परिक कर्त्तव्य के सम्बन्ध में समानता होती है। संयुक्त परिवार में रहते हुए पहले बच्चे उदारता, सहिष्णुता, सेवा, सहयोगिता, प्रेम, सद्भाव, आज्ञाकारिता और हिल–मिलकर रहने की कला का पाठ पढ़ते हैं और परिवार में सबके लाभार्थ अपने स्वार्थों की बलि देना सीखते हैं। पलायन के कारण एक पुरूष अपने गाँव को छोड़कर शहर जाता है, अपने ही राज्य में या राज्य से बाहर, वह अपनी पत्नी और बच्चों को भी अपने साथ ले जाता है और इसका परिणाम संयुक्त परिवार का बिखरना होता है।

### 5.5.2.0 वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

इन समस्याओं को अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

### 5.5.2.1 अपराध

निर्धनता, बेरोजगारी तथा अपराध व बाल–अपराध एक दूसरे से आन्तरिक रूप में सम्बन्धित हैं। **करवाल** ने अपराध को कानून का उल्लंघन माना है, तो **सेथना** ने कहा है, '' अपराध कोई कार्य या दोष है जो देश में उस समय प्रचलित कानून के अन्तर्गत दण्डनीय है।'' अपराध से किसी न किसी प्रकार की हानि पहुँचती है। कोई भी कार्य तब तक अपराध नहीं माना जाएगा जब तक वह उस देश के कानून द्वारा निषिद्ध नहीं है। उत्तराखण्ड में अनेक प्रकार के विश्वास तथा प्रथाऐं देखने को मिलती हैं। इन प्रथाओं तथा विश्वासों के कारण भी अपराधी व्यवहारों को प्रोत्साहन मिलता है। बाल–विवाह, चोरी, हत्या करना, यौन–अपराध, डकैती आदि की संख्या बढ़ रही है, अपराध की भाँति बाल–अपराधों, विशेषकर औद्योगिक केन्द्रों में भी तेजी से वृद्धि हो रही है।

औद्योगीकरण व नगरीकरण के साथ उत्तराखण्ड में भी श्वेतवसन अपराधियों की संख्या बढ़ गई है। उद्योगपति वर्ग में अनेक व्यक्ति अपराध करते पकड़े गए हैं। व्यापारिक वर्ग के व्यक्ति भी श्वेतवसन अपराधियों या सफेदपोश अपराधियों के रूप में पाए जाते हैं। वस्तुओं में मिलावट करके जनता को अत्यन्त हानि पहुँचायी जाती है। आज वकील, डॉक्टर, नर्स, शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धक, राजनैतिक नेता तथा सरकारी अधिकरी भी धूस लेकर या आर्थिक शोषण करते समय पकड़े गए हैं।

### 5.5.2.2 मद्यपान तथा मादक–द्रव्य–व्यसन

उत्तराखण्ड में मद्यपान एक बहुत बड़ी समस्या है। इससे वैयक्तिक विघटन ही नहीं परन्तु यह समाज को भी प्रभावित करता है। एक शराबी व्यक्ति किसी भी साधन से शराब प्राप्त करने का प्रयत्न करता है और उसके दैनिक क्रियाकलाप में शराब सम्मिलित हो जाती है जिससे व्यक्ति का स्वास्थ गिरता है, मानसिक शांति व स्थिरता जाती रहती

है, पारिवारिक जीवन विषमय हो जाता है और सामाजिक जीवन में अनेक समस्याओं का उद्‌भव होता है। **मित्रा** के अनुसार, ''मद्यपान वह अवस्था है जबकि व्यक्ति के लिए शराब पीना, इतना आकर्षक बन जाता है कि वह व्यक्ति बिना सोचे–समझे ही पीता रहता है कि उसके मस्तिष्क, शरीर, परिवार तथा समाज पर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा। कठिनाई की बात यह है कि यदि एक व्यक्ति मित्रता, मजाक, फैशन या अन्य किसी दुःख–दर्द के कारण शराब पीना शुरू कर देता है तो अधिकतर धीरे–धीरे उसकी आदत पड़ती जाती है और बाद में समाज को हानि होती है। मद्यपान को व्यक्तिगत, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक या नैतिक किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं कहा जा सकता है। इससे न केवल व्यक्तिगत जीवन के पतन की राह बनती है बल्कि परिवार तथा समाज के जीवन को भी खतरा उत्पन्न होता है।

नशाखोरी के अन्य साधन हो सकते हैं, जैसे गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, एल0 एस0 डी0, मॉरफीन आदि। नशाखोरी से अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक हानियाँ होती हैं और इसी कारण राज्य को नशा निषेध करना पड़ता है। मद्यपान तथा मादक पदार्थ की बुराई की रोकथाम के लिए सामाजिक जागरूकता की आवश्यकता है।

### 5.5.2.3 वेश्यावृत्ति

वेश्यावृत्ति एक गंभीर समस्या है जो नैतिक जीवन पर निरन्तर आघात करती रहती है, सन् 1965 से पहले तक वेश्यावृत्ति खुले तौर पर और आम सड़क और बाजारों में खूब प्रचलित था, आज भी एक 'सैक्स वर्कर' के नाम से वेश्यावृत्ति प्रचलित है। वेश्याओं के साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने वाले लोग शीघ्र ही अनेक प्रकार के गुप्त रोगों के शिकार हो जाते हैं, और गरीबी के कारण अपना इलाज भी नहीं करवा पाते। उत्तराखण्ड में भी एड्‌स के मरीज हैं जिन्हें उसके दुष्परिणाम झेलने पड़ रहे हैं तथा परिवार पर भी इसका असर हो रहा है। ऐसे रोगों का हस्तान्तरण पत्नी को ही नहीं बल्कि बच्चों को भी हो जाता है।

### 5.5.2.4 यौन – विचलन और एड्‌स की समस्या

यौन–पथभ्रष्टता के प्रमुख स्वरूपों को क्रमबद्ध रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है –

1.पूर्व–वैवाहिक,उत्तर–वैवाहिक तथा अतिरिक्त–वैवाहिक यौन पथभ्रष्टता,

2.समलिंगकामुकता

3.बलात्कार

4.अनब्याहा मातृत्व

5.वेश्यावृत्ति

एड्‌स का कारण केवल एक से अधिक लोगों के साथ असुरक्षित यौन–सम्बन्ध रखने से ही नहीं बल्कि इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे : दूषित इंजेक्शन का प्रयोग करना, नशे की आदत होना खासतौर से जो इंजेक्शन के द्वारा लिए जाते हैं,रोगग्रस्त पुरूष या स्त्री से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करना अथवा रोगग्रस्त माँ से बच्चे को।

### 5.5.3 सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं

इन समस्याओं को अग्रांकित शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है–

#### 5.5.3.1 जातिवाद

क्योंकि हिन्दू समाज छोटे–छोटे टुकड़ों में विभाजित हुआ है और साथ ही उनमें ऊँच–नीच का एक संस्तरण भी कर दिया गया इसलिए जातिवाद और अस्पृश्यता की भावना उत्तराखण्ड में भी पाई जाती है, जातिवाद एक जाति के हित के सम्मुख अन्य जातियों के सामान्य हितों की अवहेलना और प्रायः हनन करने की प्रवृत्ति है। जातिवाद के विकास के कई कारक है, जैसेः विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध, प्रचार व यातायात के साधनों में वृद्धि, नगरीकरण, अपनी जाति की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए, औद्योगिक विकास संस्कृतिकरण, विभिन्न जातीय संगठन आदि।

***जतिवाद के परिणामः*** जातिवाद, प्रजातन्त्र के लिए घातक है, नैतिक पतन, औद्योगिक कुशलता में बाधा, गतिशीलता में बाधक, विभिन्न समस्याओं का उदय तथा सामाजिक तनाव। राष्ट्र के विकास एवं सन्तुलित सामाजिक विकास के लिए जातिवाद की भावना निश्चय ही बाधक है। यह भावना व्यक्ति–व्यक्ति के बीच दूरी बढ़ाती है और अपनी ही जाति के सदस्यों के हितों को सर्वोपरि मानती है। आज विभिन्न जातियाँ मिलकर भी अपना संगठन बना रही हैं और राजनैतिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए इनका प्रयोग कर रही हैं।

#### 5.5.3.2 क्षेत्रवाद

क्षेत्रवाद या क्षेत्रीयता एक क्षेत्र–विशेष में निवास करने वाले लोगों के अपने क्षेत्र के प्रति वह विशेष लगाव व अपने (अपनेपन) की भावना है जिसे कि कुछ सामान्य आदर्श, व्यवहार, विचार तथा विश्वास के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। बहुधा भौगोलिक कारक क्षेत्रीयता के विकास का एक अत्यन्त प्रभावपूर्ण कारक बन जाता है। भौगोलिक कारकों की भाँति ऐतिहासिक कारक भी क्षेत्रीयता के विकास में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। अनेक राजनैतिक कारक भी क्षेत्रीयता के विकास में अपना योगदान देते हैं। राजनैतिक संगठन या पार्टियाँ ऐसी हैं जो कि क्षेत्रीयता को भड़काकर लोकप्रिय होने का प्रयत्न करती हैं। प्रादेशिक भाषा के बोलने वालों को अपनी भाषा के प्रति अत्यधिक संवेगात्मक लगाव होता है जिसके फलस्वरूप वे यह मान बैठते हैं कि उनकी ही भाषा की शैली, शब्दावली, साहित्यिक समृद्धि तथा गहनता अन्य सभी भाषाओं से कहीं अधिक आकर्षक व श्रेष्ठ है। क्षेत्रीयता के कई दुष्परिणाम भी हैं। विभिन्न क्षेत्रों के बीच आर्थिक, राजनीतिक यहाँ तक कि मनोवैज्ञानिक संघर्ष और तनाव बढ़ सकता है। प्रत्येक क्षेत्र अपने स्वार्थों को सर्वोच्च स्थान दे बैठता है और उसे अपनी ही चिन्ता होती है। भाषा की भी समस्या जटिल हो जाती है तथा राष्ट्रीय एकता को चुनौती देती है।

#### 5.5.3.3 आतंकवाद

वास्तव में, आतंकवाद की कोई सर्वमान्य परिभाषा सम्भव नहीं है क्योंकि अब तक आतंकवाद के अनेक स्वरूप हमारे सामने आए हैं। फिर भी सामान्य रूप में यह कहा जा सकता है कि आतंकवाद, हिंसा की धमकी के उपयोग द्वारा

लक्ष्य–प्राप्ति के लिए संघर्ष या लड़ाई की एक विधि व रणनीति है एवं अपने शिकार में भय पैदा करना इसका मुख्य उद्देश्य है, उत्तराखण्ड, नेपाल की सीमा से लगा हुआ है जिसके वजह से माओवाद का भय यहाँ अनेक स्थानों में पाया जाता है। यह मानवीय सभ्यता व मानवोचित गुणों जैसे –दया, सहयोग, सहानुभूति, सुख व शान्ति को नष्ट करता है।

### 5.5.3.4 लोक जीवन में भ्रष्टाचार

भ्रष्टाचार सदैव किसी स्पष्ट अथवा अस्पष्ट लाभ के लिए कानून तथा समाज के विरोध में किया जाने वाला कार्य है। भ्रष्टाचारी व्यक्ति सहयोग, सेवा–कर्तव्य और नियम–कानून के प्रति निष्ठा की भावना को तिलांजलि देकर केवल अपने ही स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति में लगा रहता है। भारतीय सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार की रूपरेखा जानने के लिए हमें अनेक विभिन्न रूपों को भी जानना होगा,यथा–

उद्योगपतियों में भ्रष्टाचार,ठेकेदारों में भ्रष्टाचार,प्रतिष्ठित व्यापारी वर्ग में भ्रष्टाचार,सरकारी अधिकारी एवं भ्रष्टाचार,वकील और भ्रष्टाचार,शैक्षिक संस्थाऐं एवं भ्रष्टाचार,डॉक्टर और भ्रष्टाचार,राजनीति और भ्रष्टाचार।

### 5.5.3.5 निर्धनता

उत्तराखण्ड के कई इलाके आज भी गरीबी में जूझ रहे हैं। जीवन स्तर अब भी नीचा है। निर्धनता के कारण ही इस क्षेत्र में अधिकतर जनता सन्तुलित भोजन का उपभोग नहीं कर पाती है और न उचित मात्रा में कपड़ों का उपभोग कर पाती है, निर्धनता के कारण स्वास्थ खराब हो जाने पर उसका इलाज भी अच्छे डॉक्टरों से नहीं करा सकते। लोग निर्धनता से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या तक कर बैठते हैं। निर्धनता के सामाजिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, राजनैतिक कारण है और जनसंख्या भी एक कारक है।

**सामाजिक कारण**

- जाति प्रथा
- संयुक्त परिवार प्रणाली
- बिमारी तथा निम्न स्वास्थय स्तर
- अशिक्षा

**व्यक्तिगत कारण**

- बीमारी
- मानसिक रोग
- बुरी आदतें
- दुर्धटनाऐं

**आर्थिक कारण**

- खेती की पिछड़ी दशा

- कम पूँजी
- परिवहन व संचार के उन्नत साधनों की कमी
- श्रमिकों की कार्यक्षमता की कमी
- प्राकृतिक साधनों का अपर्याप्त उपयोग

**राजनैतिक कारण**

- राजनैतिक घुसपैठ
- राजनैतिक अस्थिरता व मँहगे चुनाव
- राजनैतिक भ्रष्टाचार

**(i) जनसंख्या वृद्धि की समस्या**

जनगणना 2001 के अनुसार उत्तराखण्ड की जनसंख्या 84.89 लाख थी। जिसमें पुरूषों की संख्या 43.26 लाख और महिलाओं की 41.63 लाख, उत्तराखण्ड का लिंगानुपात 964 : 1000 है। भारत में बढ़ती हुई जन्म–दर तथा घटती हुई मृत्यु–दर दोनों ही बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उत्तरदायी हैं। भारत में अब भी धर्म, प्रथा और परम्परा का बोलबाला है। हिन्दू समाज में पुत्र का महत्व अत्यधिक है। यह माना जाता है कि पुत्र की प्राप्ति के बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। पुत्र ही तर्पण और पिण्डदान के द्वारा पितरों की आत्मा को शांति प्रदान कर सकता है। साथ ही वंश की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए भी पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक माना जाता है। अति जनसंख्या देश की आर्थिक प्रगति में बाधा डालती है तथा बेकारी की समस्या इससे गम्भीर हो जाती है। यह एक वास्तविकता है कि जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति राष्ट्र के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इसलिए इस समस्या को सुलझाने के लिए हमें हर सम्भव प्रयास करना चाहिए।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. पारिवारिक तनाव से आप क्या समझते है?
2. क्या क्षेत्रवाद एक सामाजिक समस्या है?
3. निर्धनता के कारणों का उल्लेख कीजिए।

## 5.6 सारांश

उत्तराखण्ड भी भारत के दूसरे प्रदेशों की तरह कई समस्याओं से जूझ रहा है। प्रत्येक समुदाय अपनी समस्याओं का व्यावहारिक समाधान करने के लिए व्यापक स्तर पर प्रयत्न करता है। क्योंकि उत्तराखण्ड को एक नए राज्य के रूप में केवल ग्यारह वर्ष हुए है, तो इसकी अपनी राजनीतिक व सामाजिक समस्याऐं हैं। उत्तराखण्ड के दों मण्डल हैं – कुमाँऊ मण्डल एवं गढ़वाल मण्डल, इन दोनों मण्डलों की अपनी–अपनी सामाजिक और भौगोलिक समस्याऐं हैं। इन्हें हम निम्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं: **पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐ** : पारिवारिक विघटन,पारिवारिक तनाव,परिवार परित्याग, तथा संयुक्त परिवार का विघटन । **वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं** : अपराध, मद्यपान तथा मादक–द्रव्य–व्यसन, वेश्यावृत्ति, यौन–विचलन और एड्स की समस्या। **सामुदायिक जीवन से सम्बन्धित समस्याऐं** : जातिवाद, क्षेत्रवाद, आतंकवाद , लोक जीवन में भ्रष्टाचार , निर्धनता, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि।

यह स्पष्ट है कि सामाजिक समस्या कोई ऐसी सामाजिक अवस्था है जिसको कि आमतौर पर लोग बुरा मानते है और साथ ही उसके विलोपन या निरसन व उपचार के लिए प्रयास भी किए जाते हैं। उपरोक्त समस्याओं के अतिरिक्त उत्तराखण्ड में कई बड़ी–छोटी समस्याऐं पायी जाती हैं। पारिवारिक समस्या हो या सामूहिक समस्या, हर एक नागरिक का कर्तव्य बनता है कि वह अपनी ओर से किसी समस्या को बढ़ावा न दे। प्रत्येक नागरिक का फर्ज़ है कि वह अपने–अपने परिवार, अपने समाज तथा अपने देश की प्रगति में अपना बहुमूल्य योगदान दे और कल्याण कार्य करते चले जाए तभी हम एक सुखमय जीवन की आशा कर सकते हैं और एक व्यवस्थित एवं सन्तुलित समाज की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

## 5.7 तकनीकी शब्दावली

1. **जैविकीय–** शरीर संबंधी
2. **पारिवारिक विघटन–** परिवार में टूटन या बिखराव
3. **लोक जीवन–** सार्वजनिक जीवन

## 5.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.3
इकाई 1.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.3
इकाई 1.4 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.4.1
इकाई 1.5 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.5.1.2
इकाई 1.5 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.5.3.2
इकाई 1.5 के स्वमूल्यांकित प्रश्न 3 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 1.5.3.5

## 5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची


मुखर्जी,आर तथा अग्रवाल,भरत, *सामाजिक समस्याऐं,* विवेक प्रकाशन, 2003

सचदेवा,डी.आर तथा विद्याभूषण , *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोश्योलॉजी,* किताब महल ,इलाहाबाद, 2004

पाण्डेय,बी.डी., *कुमाँऊ का इतिहास,* शक्ति प्रेस,अल्मोड़ा,1937

रतूड़ी,हरिकृष्ण, *गढ़वाल का इतिहास,* भागीरथी प्रकाशन, पौड़ी,वि,1954


## 5.10 सहायक / उपयोगी ग्रंथावली


मुखर्जी,आर तथा अग्रवाल,भरत, *सामाजिक समस्याऐं,* विवेक प्रकाशन, 2003

सचदेवा,डी.आर तथा विद्याभूषण , *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोश्योलॉजी,* किताब महल ,इलाहाबाद, 2004


## 5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक समस्या को परिभाषित करते हुए, उसकी विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. विद्वानों ने किस प्रकार से सामाजिक समस्याओं को वर्गीकृत किया है?

## इकाई–छह : उत्तराखण्ड का धार्मिक जीवन


6.1 प्रस्तावना

6.2 इकाई के उद्देश्य

6.3 धर्म की अवधारणा

6.4 उत्तराखण्ड के धार्मिक मेले

- 6.4.1 कालिका मेला
- 6.4.2 रेणुका देवी का मेला
- 6.4.3 पूर्णागिरी मेला
- 6.4.4 सेल्कु का मेला
- 6.4.5 नन्दाजात तथा नन्दा राजजात
- 6.4.6 माघ मेला
- 6.4.7 हिलजात्रा
- 6.4.8 मौण का मेला
- 6.4.9 नन्दादेवी का मेला
- 6.4.10 शिवरात्रि
- 6.4.11 उत्तरायणी मेला
- 6.4.12 बग्वाल मेला
- 6.4.13 मोस्टामाणू का मेला
- 6.4.14 तार्केश्वर मेला

6.5 उत्तराखण्ड के प्रमुख धार्मिक स्थल

- 6.5.1 हरिद्वार
- 6.5.2 ऋषिकेश
- 6.5.3 केदारनाथ
- 6.5.4 बद्रीनाथ
- 6.5.5 यमुनोत्री
- 6.5.6 गंगोत्री
- 6.5.7 नैनादेवी – नैनीताल
- 6.5.8 जागेश्वर
- 6.5.9 पाताल भुवनेश्वर

6.6 उत्तराखण्ड के उत्सव तथा त्यौहार

6.7 उत्तराखण्ड के लोक देवता

6.8 जागर

6.9 सारांश

6.10 तकनीकी शब्दावली

6.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

6.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

6.13 सहायक / उपयोगी

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

## 6.1 प्रस्तावना

धर्म किसी एक या अधिक पारलौकिक शक्ति में विश्वास और इसके साथ–साथ जुड़ी रीति–रिवाज,परम्परा,पूजा पद्धति और दर्शन का समूह है। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर **महावीर सरन जैन** का कहना है कि आज धर्म को जिस रूप में प्रचारित एंव व्याख्यायित किया जाता रहा है. उससे बचने की जरूरत है। वास्तव में धर्म संप्रदाय नहीं है. जिन्दगी में हमें जो धारण करना चाहिए, वही धर्म है। नैतिक मूल्यों का आचरण ही धर्म है। धर्म मनुष्य में मानवीय गुणों के विकास की भावना है, सार्वभौम चेतना का सत्यसंकल्प है।धर्म एक बहुत व्यापक शब्द है। धर्म शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं, यथा– सुकृतया पुण्य, न्याय, स्वभाव, आचरण, सत्संग, दान आदि, धर्म का धातुगत अर्थ धारण करना ही होता है। **निरूक्त** में धर्म शब्द का अर्थ नियम बताया गया है । इससे धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ यह समझ सकते हैं– जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है, वही धर्म है । वेदों में लिखा है कि धर्म का अर्थ सुख होता है । यह सुख दो प्रकार का है–इस लोक का सुख तथा परलोक का सुख। इसलिए जिससे इन उपरोक्त अंकित सुखों की प्राप्ति हो वही धर्म है। सभी लोग पारलौकिक सुख के लिए प्रयत्न करते हैं और उसका साधन धर्म को माना जाता है।धर्म किसी ना किसी प्रकार की अतिमानवीय एंव अलौकिक शक्ति पर विश्वास है जिसका आधार भय,श्रद्धा,भक्ति और पवित्रता तथा अभिव्यक्ति, प्रार्थना और आराधना है।

भारतीय विचारकों ने मंथन करके धर्म के स्वरूप को इस प्रकार से व्यक्त किया है– वह मानव धर्म जिससे इहलोक और परलोक दोनों का अभ्युदय, चारों पुरूषार्थों (धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष) की प्राप्ति होती है, उसी को हम धर्म कहते व समझते हैं। एक अत्यंत सरल भाषा में हम यह कह सकते हैं कि जो बिना भेद–भाव किए,अभ्युदय की ओर ले जाए और सबको सत्य एंव कल्याण का मार्ग दिखाए, वही धर्म है।पाश्चात्य विद्वान, धर्म को अनेक तरह से परिभाषित करते हैं। **टाइलर**, ''आत्माओं में विश्वास को ही धर्म मानते हैं।'' इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह माना जाता है कि मनुष्य शरीर के भीतर एक ऐसी वस्तु है ,जो उससे बाहर आ सकती है। मृत्यु के पश्चात वही देह को छोड़कर चली जाती है जिसे हम आत्मा कहते हैं। आत्मा में विश्वास के कारण मनुष्य में कई धारणाओं तथा धार्मिक संस्कारों की सृष्टि हुई।

मानव ने जब प्रकृति की विकराल और खौफनाक घटनाओं को देखा तो उसे लगा कि प्रकृति की कोई ऐसी ताकत है जो सब कुछ नियंत्रित करती है, धार्मिक चेतना के इस विषय की कभी एक ईश्वर के रूप में कल्पना की जाती है तो कभी अनेक देवी–देवताओं के समूह के रूप में, साथ ही यह भी कल्पना की जाती है कि विभिन्न देवी–देवताओं में भिन्न प्रकार की शक्तियाँ पाई जाती हैं। उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के दो सबसे महत्वपूर्ण देवता इन्द्र और वरूण समझे जाते हैं। इन्द्र, बल और शक्ति के अधिष्ठाता हैं और वरूण मुख्यतयाः नैतिक व्यवस्था के संरक्षक, जिस तरह बौद्ध धर्म में निर्वाण की अवधारणा को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है उसी तरह अन्य धर्मो में अपनी–अपनी अवधारणाओं को मान्यता दी जाती है , हर धर्म में मानव की कल्पनाओं एवं लक्ष्य संम्बन्धी धारणाओं में अनेक समानता पायी जाती हैं, वहीं पर अनेक भेद भी दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं धारणाओं तथा कल्पनाओं पर भिन्न संस्कृतियों की छाप रहती है। विभिन्न धर्मों में पाये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों तथा उपासना एंव भक्ति के रूप में आश्र्चयजनक समानताऐं भी पायी जाती हैं।

## 6.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य विभिन्न स्रोतों के माध्यम से उत्तराखण्ड के धार्मिक जीवन का परिचय कराना हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप यह निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- धर्म का वास्तविक स्वरूप
- उत्तराखण्ड के विभिन्न धार्मिक मेले
- उत्तराखण्ड के प्रमुख धार्मिक स्थल
- उत्तराखण्ड के उत्सव तथा त्यौहार
- उत्तराखण्ड के लोक देवता
- जागर अनुष्ठान

## 6.3 धर्म की अवधारणा

धार्मिक धारणाओं का स्वरूप ऐतिहासिक होता है,अर्थात समय के साथ–साथ धार्मिक विश्वास भी बदलते रहते हैं। सभ्यता की प्रगति के साथ–साथ मनुष्य अपनी विभिन्न रूचियों,स्वार्थों तथा विषयों को अलग कर लेते हैं तथा उपासना और पूजा की पद्धतियाँ भी बदल लेते हैं। मनुष्य जिन देवी देवताओं की उपासना करता है, उनका उसके जीवन की महत्वपूर्ण जरूरतों से घना सम्बन्ध रहता है। जैसे, वैदिक आर्यों के जीवन में कृषि का एक प्रमुख स्थान था। इसलिए उन्होंने मुख्य देवता इद्र की इस प्रकार कल्पना की थी कि वह कृषि के लिए उपयोगी हो सकें। वैदिक इन्द्र को बादलों एंव वर्षा का देवता माना जाता है।

जैसे–जैसे मनुष्य का प्रकृति की भौतिक शक्तियों पर अधिकार बढ़ता गया, वैसे–वैसे उसके उपास्य देवताओं की प्रकृति बदलती गयी है, यह भी देखा गया है कि एक ही संस्कृति के अन्तर्गत शिक्षित और विद्धान लोग ईश्वर अथवा चरमतत्व की कल्पना एक तरह से करते हैं। और साधारण लोग दूसरे प्रकार से। फिर भी विभिन्न युगों तथा विभिन्न देशों में पाई जाने वाली धार्मिक चेतना के विषय में कुछ गुण ऐसे पाये जाते हैं जो सार्वभौम हैं, जैसे शक्ति तथा विराटता, रहस्यमयता और आकर्षण अतुलनीय हैं।

**बृहदारण्यक उपनिषद** में, ब्रहम का निम्नलिखित वर्णन मिलता हैः

***" वह स्थूल नहीं है,अणु नहीं है, ह्रस्व नहीं है, दीर्घ नहीं है, लाल नहीं है, उसमें छाया नहीं है, अंधेरा नहीं है, उसमें रस,गंध,रूप,शब्द,गति कुछ भी नहीं है"।*** इस प्रकार ब्रहम के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वह किसी दुसरी वस्तु के सदृश्य या समान है। केनोपनिषद में भी कहा गया है कि ब्रहम तक न वाणी पहुँचती है ना मन और ना आँखें । उनके वर्णन का केवल एक ही उपाय है। यह कहना कि **वह है** ।

विद्धान ***प्रेजर ने कहा है कि "धर्म वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में एक सोपान मात्र है। धर्म की उत्पत्ति जादू–टोने से होती है और जब जादू–टोने से काम नहीं चलता तो विज्ञान का उदय होने लगता है।"*** मानव चिन्तन का विकास कुल मिलाकर जादू–टोने से धर्म की और धर्म से विज्ञान की दिशा में हुआ है।

उपनिषदों के अनुसार मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है कि वह उन कारणों को दूर करे जिनके कारण जीवात्मा जन्ममरण के बन्धन में पड़ता है। इसी को मोक्ष कहते हैं। आत्मतत्व को पहचाने बिना वह मोक्ष संभव नहीं है, जो जीव अपने पुण्यों के द्वारा आत्मतत्व को पहचान जाता है, वह देवयान द्वारा ब्रहमलोक या सत्यलोक को जाता है। जहाँ से पुनः इस मुत्युलोक में कष्ट उठाने के लिए लौटना नहीं पड़ता । जो जीव इस अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते,उनके लिए कर्म सिद्धान्त के अनुसार पुनर्जन्म का बंधन रहता है।

मध्ययुग में विकसित धर्म एंव दर्शन के परंपरागत स्वरूप एंव धारणाओं के प्रति आज के व्यक्ति की आस्था कम होते जा रही है। ***मध्ययुगीन धर्म एंव दर्शन के प्रमुख प्रतिमान थे– स्वर्ग की कल्पना, सृष्टि एंव जीवों के कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना***। वर्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध अपने देश एंव काल की माया एंव प्रपंचों से परिपूर्ण

अवधारणा , उस युग में व्यक्ति का ध्यान अपने श्रेष्ट आचरण, श्रम एंव पुरूषार्थ द्वारा अपने वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान करने की ओर कम था, अपने आराध्य की स्तुति एंव जयगान करने में अधिक था।

धर्म के व्याख्याताओं ने संसार के प्रत्येक क्रियाकलापों को ईश्वर की इच्छा माना तथा मनुष्य को ईश्वर की हाथ की कठपुतली के रूप में स्वीकार किया। दार्शनिकों ने व्यक्ति के वर्तमान जीवन की विभिन्नता हेतु '***कर्म सिद्धान्त***' के सूत्र को प्रतिपादित किया। इसका परिणाम मध्य युग में यह हुआ कि वर्तमान की सारी मुसीबतों का कारण '***भाग्य' अथवा ईश्वर की मर्जी को मान लिया गया।*** धर्म के ठेकेदारों ने पुरूषार्थ के मुख्य द्रार पर ताला लगा दिया। समाज या देश की विभिन्नता को उसकी नियति मान लिया गया, समाज स्वयं भी भाग्यवादी बन कर अपनी सुख–दुख स्थितियों से संतोष करता रहा। आज के युग ने यह चेतना प्रदान की है कि विकास का रास्ता हमें स्वयं बनाना है। किसी समाज या देश की समस्याओं का समाधान कर्म–कौशल, व्यवस्था–परिर्वतन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास ,परिश्रम तथा निष्ठा से सम्भव है। आज के मनुष्य की रूचि अपने वर्तमान जीवन को संवारने में अधिक है, उसका ध्यान भविष्यमुखी ना होकर वर्तमान में है, वह दिव्यताआं को अपनी ही धरती पर उतार लाने के प्रयास में लगा हुआ है । वह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है।

उत्तराखण्ड एक सांस्कृतिक राज्य माना जाता है, वस्ततुः इस राज्य के साथ लगा पश्चिमी नेपाल का काली नदी तक विस्तृत प्रदेश भी कुछ शताब्दी पूर्व तक उत्तराखण्ड के साथ जुड़ा था। पुरातत्व की दृष्टि से समृद्व होते हुए भी इस क्षेत्र का सामाजिक इतिहास धुँधला है।

## 6.4 उत्तराखण्ड के धार्मिक मेले

हिमालय के इस पर्वतीय क्षेत्र में मेले सांस्कृतिक सम्मेलन के प्रमुख केन्द्रों के अतिरिक्त जीवन की एक आवश्यकता बनकर विद्यमान रहे हैं। पहाड़ों में दूर–दूर बसने वाले लोगों के लिए एक लम्बे समय तक अपने मित्र–संबधियों से मिलना सम्भव नहीं हो पाता था। यातायात और व्यापार की कमी के कारण दूर–दूर के गाँव जाकर अपनी आवश्यकताओं की चीजों को जुटाना दुष्कर होता था क्योंकि एक स्थान पर ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना सम्भव नहीं था,शरीर एंव मन भी थक जाते थे क्योंकि लोगों को पहाड़ियों में ही अपना जीवन जीना पड़ता था। इन सब समस्याओं के निराकरण के रूप में मेलों की उत्पत्ति हुई। जिसमें आस–पास के गाँवों के लोग एक निश्चित स्थान पर एकत्र होकर अपना दुःख–सुख बाँटते, गीत, नृत्य आदि से अपना मनोरंजन करते और अपनी–अपनी हस्त निर्मित वस्तुओं का आदान–प्रदान करते । धीरे–धीरे इसका रूप बढ़ता गया।

मेले शब्द का तात्पर्य मिलन से है, जो ' मेल' से बना है । किसी निश्चित तिथी को विशेष स्थान पर होने वाला जन–समूह का मिलन ही हम मेला समझ सकते हैं। इस मिलन का धार्मिक और व्यापारिक महत्व होता है। अधिकांश मेले धार्मिक पर्वों पर लगते हैं, क्योंकि यह दिन एक निश्चित त्यौहार अथवा पर्व का संकेत होता है और अपने कृषि सम्बन्धित कार्यों से अवकाश लेकर धार्मिक क्रिया–कलापों को समर्पित होता है एवं इसका आयोजन धार्मिक स्थलों पर

होता है। कई सामूहिक पूजाओं ने भी मेलों का रूप धारण कर लिया । मेलों से जुड़े पर्वों में से कुछ प्राकृतिक–भौगोलिक पर्व हैं,कुछ स्थानीय और कुछ सर्व प्रचलित पर्व हैं।

### 6.4.1 कालिका मेला

चैत तथा आश्विन मास की नवरात्रियों में गंगोलीहाट के कालिका मंदिर में देवी का एक बड़ा मेला लगता है। इस मेले में देवी को भैंसों और बकरियों की बलि चढ़ाई जाती है। भक्तगण देवी की पूजा करने के लिए अलग– अलग स्थानों से एकत्र होते हैं।

### 6.4.2 रेणुका देवी का मेला

यह मेला गढ़वाल में चैत्र की 23 गते को नाकुरी ग्राम में लगता है। जिसमे देवी की पूजा अर्चना करते हैं तथा वरदान माँगे जाते हैं। मान्यता है कि देवी की गई मनोकामना अवश्य पूरी करती हैं।

### 6.4.3 पूर्णागिरी मेला

नेपाल की सीमा के निकट काली नदी के किनारे के ऊँचें शिखर पर स्थित पूर्णागिरी देवी का मंदिर है। इस मंदिर में विषुवत संक्रान्ति को एक धार्मिक मेला लगता है।

### 6.4.4 सेल्कु का मेला

भाद्रपद के अन्त में गढ़वाल के हरसिल,मुखना,झाला,सौरा,लाटा,गोरसाली तथा सेंज आदि स्थानों पर सेल्कु के नाम से मेले लगते हैं। 20से 30 गते तक लगने वाले इन मेलों में गढ़वाल लोक संस्कृति अपने उत्कर्ष पर दिखाई देते हैं।

### 6.4.5 नन्दाजात तथा नन्दा राजजात

नन्दाष्टमी के अवसर पर ही गढ़वाल में नन्दाजात का उत्सव होता है। प्रतिवर्ष नन्दा अपने ससुराल बधाण (त्रिशूल पर्वत) से अपने मायके चाँदपुर आती हैं, विदा होते वक्त सभी गाँवो के भक्तगण उसे भेंट देते हैं। इसी विदाई समारोह को नन्दाजात कहा जाता है। हर बारह वर्ष बाद बड़ी यात्रा होती है जिसे राजजात कहते हैं।

पुराने समय में राजजात का राजाओं द्वारा आयोजन किया जाता था। मान्यता यह है कि प्रत्येक बारह वर्ष उस क्षेत्र में कही भी एक चौसिंगी बकरा पैदा होता है, तब नन्दा राजा को स्वप्न में दर्शन देती है और राजा राजजात की तैयारी करता है, देवी की प्रतिमा को सोने–चाँदी से सजा डोले में रखकर रिंगाल और भोजपत्र से बनी छत्र–छंतोली की छाया देते हुए जुलूस निकालते हैं और नन्दा को विदा किया जाता है। डोले के आगे–आगे चौसिंगी बकरा पथ प्रदर्शक के रूप में चलता है। यात्रा राजा के निवास स्थान से निकलती है और नौटी, चादँपुर, सेम, भगौती, कुलसारी, चैपड्डयू, नारायणबगड़, देवाल और रूपकुण्ड होती हुई हेमकुण्ड पहुँचती है।16500 फीट ऊँचे हेमकुण्ड में त्रिशूल पर्वत की जड़ पर त्रिशूल हिमनद के पास डोला उतारा जाता है और फिर हवन किया जाता है, उसके बाद छंतोला तोड़कर उसकी

खपच्चियों को प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है, फिर खाद्य वस्तुआं से लदे हुए मेढ़े (बकरे) को अकेले ही त्रिशूल पर्वत की ओर रवाना कर दिया जाता है। गाथाओं के वर्णन एंव जनश्रुति के अनुसार, मेढ़ा स्वंय पर्वत की ओर बढ़ जाता है। इस प्रकार नन्दा की ससुराल यात्रा पूरी होती है। यह यात्रा बीस–इक्कीस दिनों की होती है।

### 6.4.6 माघ मेला

नन्दा जात के बाद गढ़वाल मण्डल का यह सबसे बड़ा मेला है। इसमें नौगाँव विकास खण्ड के कुण्ड तथा उत्तरकाशी के विश्वनाथ मंदिर के साथ–साथ अनेक मंदिरों में मेले लगते है और शिव की आराधना करते हैं। यह एक सप्ताह से चलने वाला मेला धार्मिक और व्यापारिक महत्व रखता है। गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों से देवताओं की डोलिया एंव सांस्कृतिक टोलिया भी यहाँ आती हैं। गढ़वाल का गौचर मेला भी व्यापारिक एंव सांस्कृतिक दृष्टि से मशहूर है।

### 6.4.7 हिलजात्रा

पिथौरागढ़ जिले में भाद्रपद माह में आठूं के नाम से गवरा( गौरा) और शिवजी की पूजा की जाती है। फसलों के पौंधे लगाए जाते हैं, खेल लगते हैं, और झोड़े इत्यादि सामूहिक व सांस्कृतिक नृत्य किए जाते हैं। पिथौरागढ़ के कुमौड़ नामक गाँव में विशेष रूप से विशाल जनसमूह के बीच लकड़ी के मुखौटे पहनकर एक विशिष्ट प्रकार का अभिनय किया जाता है। परम्परागत रूप से इसके पात्रों का नाम निश्चित होता है, जैसे घोड़िया, नानिहौल ( छोटे बैलों की जोड़ी), ठुलि हौल(बड़े बैलो की जोडी), नाई भजन मंडली, दही वाला इत्यादि।

### 6.4.8 मौण का मेला

आषाड़ मास में रवाई क्षेत्र में कमल नदी के किनारे सारीगाड़, वर्नीगाड़ आदि स्थानों पर मौण का मेला आयोजित किया जाता है। मछली पकड़ना एक मुख्य आकर्षण होता है।

### 6.4.9 नन्दादेवी का मेला

भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में नन्दाष्ठमी का पर्व बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन मिलम, मुनस्यारी, अल्मोड़ा और नैनीताल तथा गड़वाल के अनेक स्थानों पर यह मेला आयोजित किया जाता है। तीन दिन का यह मेला नन्दा देवी का डोला उठने पर समाप्त होता है। नन्दा और सुनन्दा की प्रतिमाएँ केले के खम्भों से बनाकर पूजा की जाती है और डोले को जुलूस में निकालकर अन्त में विसर्जित किया जाता है। नन्दा को कुमाँऊ और गढ़वाल के निवासी परम शक्तिशालिनी देवी भी मानते हैं और अपनी बेटी–बहन मानकर उस पर ममतापूर्ण अधिकार जताते हुए उसके सुख–दुःख की चिन्ता भी करते हैं।

### 6.4.10 शिवरात्रि

शिवरात्रि को कुमाँऊ और गढ़वाल के भटवाडी,गंगोली, पुनेली, चित्रेश्वर, पाताल भुवनेश्वर, कपिलेश्वर, रिखेश्वर, पुंगेश्वर, मानेश्वर, कान्तेश्वर, बेतालेश्वर, जागेश्वर, विश्वनाथ, भिकियासैण, कमलेश्वर, कोटेश्वर, टपकेश्वर(देहरादून) आदि अनेक स्थानों में शिव की पूजा की जाती है व मेलों का आयोजन किया जाता है।

### 6.4.11उत्तरायणी मेला

यह मेला धार्मिक,सांस्कृतिक और व्यापारिक दृष्टि से काफी प्राचीन और लोकप्रिय है, बागेश्वर,थल, रामेश्वर, पंचेश्वर, सल्ट, भराडी, कर्णप्रयाग, रूद्रप्रयाग आदि अनेक स्थलों पर गंगा स्नान और मेलों का आयोजन होता है। सरयू और गोमती नदी के संगम पर स्थित बागेश्वर कुमाँऊ की प्राचीनतम नगरी है। मकर संक्राति को यहाँ स्नान करना,प्रयाग के समान पवित्र माना जाता है।

### 6.4.12 बग्वाल मेला

सावन की पूर्णमासी को लोहाघाट, चम्पावत तथा देवीधुरा के देवी के मंदिरों में बग्वाल मेला लगता था। आजकल यह मेला केवल देवीधुरा में दिखाई पड़ता है। बाराही देवी के पूजन के बाद मंदिर प्रांगण में आस–पास के अनेक गाँवों से आए हुए लोगों की भीड़ चार दलों(खामों) में बटकर एक–दूसरे पर बारी–बारी से पत्थर बरसाते हैं, इसी को मार का बग्वाल कहा जाता है। खेलने से पूर्व सभी खामों के लोग मुखिया के साथ मंदिर की परिक्रमा लेते हैं और बग्वाल पूरी होने पर प्रतिपक्ष के लोगों से गले मिलते हैं। यह दोस्ती का प्रतीक है। पत्थर मार के समय बचाव पक्ष वाले घास और पत्तों से बने हुए बड़े–बड़े छंतोलियों का ढाल के रूप में प्रयोग करते हैं।

### 6.4.13 मोस्टामाणू का मेला

भाद्रपद मास में ऋषिपंचमी को पिथौरागढ़ के मोस्टामाणू नामक स्थान पर मोस्ट्या देवता के मंदिर में लगने वाला प्रकृति से जुड़ा हुआ यह काफी प्राचीन काल का उत्सव है, यह माना जाता है कि देवता का जागर लगाकर, हवन पूजा करके देवता प्रसन्न होता है और वर्षा अवश्य होती है।

### 6.4.14 तार्केश्वर मेला

ज्येष्ठ तथा आाश्विन मास में तार्कश्वर महादेव गढ़वाल में शैव सिद्धान्त के अनुसार एक विशेष पूजा होती है। दक्षिण गढ़वाल में हजारों लोग एकत्र होकर रातभर भजन–किर्तन करते है। ताड़केश्वर को कौलान्दा शिव माना जाता है। इस स्थान पर शिव ने तारकासुर नामक दैत्य का वध किया था।

उपरोक्त मेलों के अतिरिक्त कुछ मेले जैसे मानेश्वर मेला, गिर का कौतिक, दुधियाड़ मेला, पिथौरागढ़ का जौलजीवी मेला, श्रीनगर में लगने वाला कमलेश्वर मेला, गुढ़केदार का मेला, धारचूला के निकट कंडाली का मेला, जौहार क्षेत्र का छुरमल मेला, नोदा कोथीम, मासी का मेला, बिखौती मेला इत्यादि काफी प्रसिद्व हैं।

कुमाँऊ और गढ़वाल के ये मेले धर्म से जुड़े हुए हैं। वेदों और पुराणों में इन तिथियों का धार्मिक महत्व भी बताया गया है। यहाँ के लोग किसी भी महत्वपूर्ण कार्य करने से पहले देवता को नमन कर कार्य सफलता हेतु प्रार्थना करते हैं। भिन्न–भिन्न पर्वो पर भिन्न–भिन्न देवी–देवताओं को पूजा जाता है।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. नन्दा राज जात से आप क्या समझते है?

3. मोस्टामाणू का मेला कहा मनाया जाता है?

## 6.5 उत्तराखण्ड के प्रमुख धार्मिक स्थल

यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही तीर्थों का स्थान एंव दर्शनीय स्थलों का आकर्षक केन्द्र रहा है। कई लोग यहाँ पर आकर बस गये जो यही की संस्कृति से घुलमिल गए और अपनी संस्कृति की कुछ छाप भी इन्होंने छोडी। इस प्रकार यहाँ के तीर्थ स्थानों में अलग–अलग प्रकार की संस्कृतियों के संगम स्थल के रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इसलिए यहाँ का सांस्कृतिक क्षेत्र एक मिला जुला एंव समृद्ध सांस्कृतिक क्षेत्र है।

पौराणिक ग्रंथ स्कन्दपुराण में यहाँ की नदियों, गुफाओं, शिवलिंगों, दुर्गापीठ आदि सिद्धपीठों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस भूमि पर देव, दानव, यक्ष, किन्नर,ऋषि–मुनियों ने कड़ी तपस्या कर पुरूषार्थों की प्राप्ति की थी। वैदिक काल में माना जाता है कि वशिष्ठ, अत्री, गौतम, विश्वामित्र आदि कई ऋषिमुनियों ने इस देवभूमि में आकर तपस्या की थी।

उत्तराखण्ड के प्रत्येक गाँव, नदी–तटा एवं पर्वतों पर कई देवी–देवताओं के मंदिर बने हुए हैं और इनमें से कई प्राचीन भी हैं। परन्तु इस क्षेत्र की धार्मिक महत्ता चार धामों–बदरीनाथ, केदारनाथ, यमनोत्री तथा गंगोत्री के कारण मानी जाती है। इसके अतिरिक्त गढ़वाल के देवप्रयाग में रघुनाथ, श्रीनगर चौंरास में कमलेश्वर, लंगूरगढ़ी में भैरव मंदिर, उत्तरकाशी में विश्वेस्वनाथ, बनगढ़ में भुवनेश्वरी, श्रीनगर में किलकिलेश्वर है। कुमाँऊ मण्डल के अल्मोड़ा में नागनाथ, भैरव, नन्दा, विश्वनाथ, अस्कोट में मल्लिकार्जुन, कालिका, चम्पावत में बालेश्वर, बैजनाथ, बागेश्वर का बाघनाथ, नैनीताल में नैना आदि के विख्यात मंदिर हैं।

### 6.5.1 हरिद्वार

**श**ास्त्रों में इसे कपिलस्थान या मायापुरी के नामों से जाना गया है। कहा जाता है कि हर की पैड़ी नामक स्थान पर अमृत, कुम्भ से छलक कर गिरा था ।इसलिए इस स्थान को पवित्र माना गया है, और प्रति बारह वर्ष बाद यहाँ कुम्भपर्व लगता है जिसमें लाखों लोग स्नान करके पुण्य के भागीदार बनते हैं। हरिद्वार का प्रमुख आकर्षण हर की पैड़ी में बहती हुई गंगा है।

हर की पैड़ी के पास ब्रहम कुण्ड में भगवान ब्रहमा ने स्वयं निवास करने का वरदान दिया था। मुख्य गंगा नदी पर नील पर्वत के नीचे नील धारा नामक स्थान है, जहाँ पर शिव जी के नील नामक एक गण ने तपस्या की थी तथा नीलेश्वर महादेव का शिवलिंग स्थापित किया था।

### 6.5.2 ऋषिकेश

ऋषिकेश का पौराणिक नाम कुब्जाभ्र है । प्राचीनकाल में कहा जाता है कि इस स्थान पर देवदत्त नामक व्यक्ति ने तपस्या की थी ।

### 6.5.3 केदारनाथ

केदारनाथ तीर्थ में कत्यूरी शैली में निर्मित मंदिर विद्यमान है,जिसके गर्भगृह में त्रिकोणाकृति की ग्रेनाइट शिला का शिवलिंग है। लिंग में श्रावण में ब्रह्मकमल पुष्प चढ़ाने का महात्म्य माना जाता है। लिंग के चारों ओर अर्घा है और एक ही पत्थर की बनी है। माना जाता है कि स्वयंभू केदारलिंग की उपासना पाण्डवों ने की थी।

केदारकल्प में कहा गया है कि यहां पर शिव जी को नन्दकेश्वर नामक वृषभ प्रदान किया था। तभी से शिव ने उसे अपना वाहन तथा ध्वज में स्थान दिया था। अनुश्रुति के अनुसार शंकराचार्य ने केदारनाथ में ही देह त्याग किया था। कहा जाता है कि छद्म वेष में किसी शैव ने ही उनको विष देकर मार डाला था।

### 6.5.4 बद्रीनाथ

बद्रीनाथ की प्रमुख विशेषता यह है की इसकी पूजा हिन्दुओं के समान जैन और बौद्ध धर्म वाले श्रद्धा और भक्ति भाव से करते हैं। महाभारत में नर–नारायण की तपस्या और बदरीकाश्रम का उल्लेख है ,पुराणों से ज्ञात होता है कि इस तीर्थ क्षेत्र के अनेक नाम रहे हैं इनमें मुक्तिप्रदा, योगसिद्धा, विशालपुरी, बदरीकाश्रम, नर–नारायणाश्रम तथा बद्रीनाथ प्रमुख हैं। इस धाम की स्थापना के संबंध में स्कन्द पुराण में उल्लेख किया गया है जब आदि गुरु शंकराचार्य अष्टखण्ड की पहाडी पर तपस्या करने जा रहे थे तो आकाशवाणी हुई की तुम जिस चीज की प्राप्ति करना चाहते हो उसकी स्थापना तुम भगवान बद्रीविशाल की पुनर्स्थापना के माध्यम से कर सकते हो। भगवान बद्रीविशाल की मूर्ति नारदकुण्ड में पड़ी है। उसे निकाल कर बद्रीधाम की स्थापना का श्रेय प्राप्त करो। इसी आकाशवाणी के आधार पर शंकराचार्य ने नारदकुण्ड से मूर्ति निकालकर बद्रीधाम की स्थापना की। एक जनश्रुति यह भी हे कि बद्री वन की सुन्दर भूमि को देखकर बद्रीविशाल ने इसी भूमि में रहने का निश्चय किया लेकिन यहां शिव और पार्वती का निवास था। भगवान बद्रीविशाल ने एक शिशु का रुप धारण किया, जिसे पार्वती उठाकर अपने निवास स्थान में ले आई। जब शिव और पार्वती स्नान करके लौटे तो देखा कि किवाड़ अन्दर से बन्द है जहाँ भगवान बद्रीविशाल बन्द थे। किवाड़ खोलने में असमर्थ होने पर शिव और पार्वती समझ गये कि भगवान विष्णु शिशु का रुप धारण करके इस धाम में स्थापित होने आये हैं। अतः शिव और पार्वती वहाँ से अन्यत्र चले गये। इस प्रकार बद्रीधाम विष्णुधाम बन गया।यहाँ तप्तकुण्ड, नारदकुण्ड व सूर्यकुण्ड के अतिरिक्त गरुड़शिला, नारदशिला, बाराहशिला, नरसिंहशिला आदि भी उल्लेखनीय स्थान हैं।

गुफाओं में व्यास, गणेश और मुचकुन्द की गुफाऐं प्रसिद्ध हैं। मन्दिर के पुजारी रावल कहलाते हैं जो आदिगुरु शंकराचार्य के वंशज तथा केरल के नम्बूदरीपाद् ब्राह्मण होते हैं। पूर्व में मन्दिर का प्रशासन महाराजा टिहरी गढ़वाल के हाथ में था किन्तु अब मन्दिर का प्रशासन समिति के पास है ।

### 6.5.5 यमुनोत्री

यमुना जिस स्थान पर इस क्षेत्र में उतरती है उसे यमुनोत्री कहते हैं। भागवत पुराण में उल्लेख है कि कृष्ण की पत्नी ने पूर्व जन्म में कालिंदी के तट पर तपस्या की थी। यमुना का असली स्रोत यमुनोत्री से लगभग 6 कि.मी. दूर कालिंदी पर्वत पर है। केदारखण्ड में यमुना के उद्भव और नामकरण के संबंध में यह कथा दी गई है कि सूर्य की दो पत्नियाँ संज्ञा और छाया थी। संज्ञा से गंगा और छाया से यम, यमी उत्पन्न हुऐ थे। इस प्रकार गंगा, यमुना वैमात्रिक बहनें थीं। माता का तिरस्कार करने से यम को श्राप के कारण भूतल पर उतरना पड़ा। तो सूर्य ने यमुना को भी तीनों लोकों के हित की भावना से पृथ्वी में अवतरित करवाया और वह पापों से संसार को मुक्ति दिलाने लगी प्रतिवर्ष यमुनोत्री मन्दिर के कपाट बैसाख महीने के शुक्लपक्ष की अक्षय तृतीया तिथि पर अप्रैल के अन्त या मई के आरम्भ में खुलते हैं तथा छः महीने प्श्चात कपाट दिवाली के दिन बंद होता है।

### 6.5.6 गंगोत्री

महाभारत में उल्लेख किया गया है कि यहाँ पर आकाश से गिरती हुई गंगा को महादेव जी ने अपने मस्तक पर धारण किया था तथा उसे मनुष्य लोक में छोड़ दिया। यहाँ गंगा के दायें तट पर गंगा जी का भव्य मन्दिर है। मन्दिर के गर्भगृह में गंगा–यमुना की आभूषण युक्त मूर्तियाँ हैं। गंगोत्री में त्रिरात्रि निवास का विशेषफल बताया गया है। कहा जाता है कि इस स्थान पर बैठकर भागीरथ ने तप किया था जहाँ पर अब पिण्ड तथा दान आदि कार्य किये जाते हैं। गौमुख वह स्थान है जहाँ विशाल हिमनद के मुख से गंगा का उद्भव होता है। गंगा और उसके जल की महिमा का बखान भारत के समस्त धर्मों के साहित्य में हुआ है। सुल्तान मुहम्मद तुगलक के लिये गंगाजल निरन्तर दौलताबाद जाता था। आईनेअकबरी में लिखा है बादशाह अकबर गंगाजल को अमृत समझते थे और वही जल पीते थे।वर्तमान में जल प्रदूषण की दृष्टि से हरिद्वार का जल काफी अशुद्ध हो गया है परन्तु गंगोत्री ही वह स्थान है जहाँ पर गंगा का सबसे शुद्ध जल है।

### 6.5.7 नैनादेवी – नैनीताल

कहा जाता है कि जब पार्वती अपने पिता दक्ष के हवनकुण्ड में कूद पड़ी तो भगवान शंकर क्रोधित होकर देवी पार्वती के शरीर को अपने कंधे पर रख कर उत्तर दिशा की ओर निकल पड़े थे। जिस स्थान पर पार्वती का नेत्र गिरा वह स्थान ने तालाब का रुप ले लिया। नैनी तलाब की आकृती नेत्र की तरह है। नैनादेवी मन्दिर में विशेष पूजा नन्दाष्टमी को होती है । उस दिन देवी को महाभोग तथा बलि दी जाती है। दशमी के दिन उत्साह पूर्वक नैनादेवी की मूर्ति विसर्जित की जाती है।

### 6.5.8 जागेश्वर

जागेश्वर अल्मोड़ा जिले में एक प्रसिद्ध धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल है। जागेश्वर को महादेव शिव के बारह ज्योर्तिलिंगों में से एक माना जाता है। इसकी स्थापना शंकराचार्य ने की थी। यहाँ कत्यूरी एवं चन्द काल में निर्मित 125 मन्दिर स्थित हैं। जागेश्वर समूह के मन्दिरों में सबसे बड़े मन्दिर जागेश्वर का जागनाथ मन्दिर, मृत्युंजय व दण्डेश्वर के मंदिर हैं इनके साथ साथ कुबेर, पुष्टि देवी मन्दिर तथा लकुलीश मन्दिर भी निर्मित हैं। जागेश्वर समूह के मंदिरों में फांसणा,वल्लभी एंव रेखा देवल प्रकार के मंदिर निर्मित हैं। जागेश्वर घाटी में मन्दिर यत्र–तत्र फैले हैं। कत्यूरी एवं चन्द राजाओं नें इन मन्दिर समूहों के संरक्षण हेतु कई ग्राम भूमि दान भी दिये थे। जागेश्वर के मुख्य मन्दिर में चन्द राजा दीप चन्द (1748.77 ई0) तथा विमल चन्द की अष्टधातु से निर्मित मूर्तियाँ भी हैं। मुख्य मन्दिर के बाहर दो विशालकाय प्रस्तर निर्मित द्वारपाल खडी मुद्रा में निर्मित हैं। यहां स्थित दण्डेश्वर के मन्दिर से दण्डेश्वर की बहुमूल्य मूर्ति प्राप्त हुई है। जिसे एक बार चोरों द्वारा चुरा भी लिया गया था। सरकार द्वारा जागेश्वर में एक संग्रहालय की स्थापना की है जिसमें जागेश्वर समूह के मन्दिरों से प्राप्त मूर्तियों को सुरक्षित रखा गया है। जागेश्वर मन्दिर का प्रबंधन आस–पास के ग्रामीण प्राचीन काल से परम्परागत रुप से कर रहे हैं। इस मन्दिर समूह के मन्दिरों के पुजारी यहाँ के आस–पास के गाँव से संबंधित हैं। जो बारी–बारी से मन्दिरों में पूजा का कार्य सम्पन्न करते हैं। परम्परा के अनुसार प्रत्येक पुजारी परिवार का सबसे बड़ा पुत्र ही मन्दिर का पुजारी पद प्राप्त कर सकता है। मन्दिर में प्रतिदिन प्रातः काल व संध्या के समय जागनाथ महाराज को महाभोग लगाया जाता है। जागेश्वर मन्दिर समूह देवदार के वृक्षों से आच्छादित सुन्दर शान्त घाटी में स्थित है। यहां स्थित नदी का उद्‌गम स्थल बागेश्वर जिले के खरही पट्‌टी के जैन–करास ग्राम में हैं। इस नदी में बरसात के अलावा अन्य मौसमों में अल्प मात्रा में जल रहता है। जागेश्वर की घाटी से 3–4 किमी दूरी की चढ़ाई पर पर्वतों के शिखर पर वृद्ध जागेश्वर स्थित है। जागेश्वर मन्दिर समूह के पास अनेक प्राचीन धर्मशालाऐं थी परन्तु ये धर्मशालाऐं अब नहीं हैं। भगवान जागेश्वर के माहात्म्य के कारण वर्ष भर यहाँ भक्तों की भीड़ लगी रहती है। जागेश्वर में श्रावण मास में मेला लगता है। इस मेले में दूर–दूर से भक्त दर्शन हेतु यहाँ आते हैं व पूजापाठ कर मनोकामनाऐं माँगते हैं। श्रीनगर के कमलेश्वर के समान यहाँ भी हाथों में दीप लेकर संतान प्राप्ति हेतु रात्रि भर खड़े रहकर आराधना की जाती है। मानसखण्ड़ में जागेश्वर के धार्मिक महत्व की बडी प्रशंसा की गई है।

### 6.5.9 पाताल भुवनेश्वर

गंगोलीहाट से लगभग 6 कि.मी. दूरी पर पाताल भुवनेश्वर का मन्दिर एवं गुफा स्थित है। पाताल भुवनेश्वर के कत्यूरी कालीन मन्दिर से मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यहाँ एक प्राचीन विशाल गुफा है। यहाँ से प्राप्त मन्दिरों में चण्डिका एवं शिव मन्दिर प्राप्त हुए हैं। यह मन्दिर 12वीं सदी ई0 के आसपास के निर्मित हैं।यहाँ से शिवलिंग, चामुण्डा देवी, विष्णु, लकुलीश, उमा महेश्वर तथा सूर्य की प्राचीन मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।मन्दिरों से 300–400 मी0 दूरी पर पाताल भुवनेश्वर की विख्यात प्राचीन गुफा स्थित है। यह गुफा देवदार के जंगल से घिरी है। गुफा में जाने के लिये झुककर जंजीरों के सहारे उतरना पड़ता है। अंदर काफी विशाल खुली हुई जगह हैं। गुफा के अन्दर कई मार्ग हैं, मुख्य मार्ग में पत्थर को काटकर सीढियाँ बनी हैं जो कि सर्प की रीढ़ सी दिखती हैं। गुफा के अन्दर नमी होने के कारण फिसलन है। काली

चिपचिपी मिट्टी से गुफा में संभल कर चलना पड़ता है। गुफा में अनेक प्रकार के प्राकृतिक चिन्ह बने हैं। कुछ तो इतने सुन्दर है कि सजीव जान पड़ते हैं। यह गुफा तीन खण्डों में विभाजित है यथा– ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवता भुवनेश्वर महादेव के रूप में पूजे जाते हैं।

इन धार्मिक स्थलों के अतिरिक्त उत्तराखण्ड में और भी ऐतिहासिक व पुरातात्विक स्थल है, जैसे, बैजनाथ, देवप्रयाग, रूद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग, विष्णुप्रयाग, कलपेश्वर, गोपेश्वर, पांडुकेश्वर, बागेश्वर, हाट–कालिका, देवीधुरा, कटारमल इत्यादि।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1. उत्तराखण्ड के चार धामों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

## 6.6 उत्तराखण्ड के उत्सव तथा त्यौहार

उत्तराखण्ड में विभिन्न धर्मों के समस्त त्यौहार, उत्सव एंव व्रत तो मनाये ही जाते हैं, साथ में कुछ स्थानीय त्यौहार भी मनाये जाते हैं। ये त्यौहार ना केवल मनोरंजन करने में सहायक हैं वरन् यह दूर देश में रहने वाले परिजनों को परस्पर मिलाने में भी योगदान देते हैं। मध्य हिमालय में स्थित उत्तराखण्ड में कई प्रकार के पर्वोत्सवों का आयोजन पूरे वर्ष किया जाता है। कुछ प्रमुख त्यौहार एंव उत्सव इस प्रकार हैः मकर संक्रान्ति (घुघुतिया), नंदाष्टमी, घी त्यार, हरेला, बिखौति, भिटौली, चैतौल, फुलदेई, संवत्सर प्रतिपदा, गंगा दशहरा, वट सावित्री, बैसी, रक्षा बन्धन, हरताली, तीज, आठूं, नवरात्रि, विजयादशमी, दीपावली, पश्वा, बसन्त पंचमी, होली इत्यादि। उपर्युक्त त्यौहार कुमाऊँ व गढ़वाल की संस्कृति को भारत के अन्य प्रान्तों से भिन्न करते हैं। प्रत्येक पूर्णमासी, अष्टमी, एकादशी तथा संक्रान्ति को व्रत–पूजन होते हैं।

## 6.7 उत्तराखण्ड के लोक देवता

उत्तराखण्ड में असंख्य देवी–देवताओं का निवास रहा है। यहाँ भारत वर्ष में प्रसिद्ध वेदों और पुराणों में वर्णित सभी देवी–देवताओं का निवास माना गया है। इनके अतिरिक्त अन्य स्थानीय देवी–देवता भी हैं, जो कुलदेवता, इष्ट देवता आदि माने जाते हैं। इस क्षेत्र में वैदिक और पौराणिक देवताओं से भिन्न आर्यों की संस्कृति, मध्य युगीन उपासना पद्धति, शाक्त और तांत्रिक साधना आदि की पूजा की जाती है। इस क्षेत्र के लोग भूत प्रेत, यंत्रतंत्र, झाड़फूँक, बक्की, जागरी में अत्यधिक विश्वास करते हैं। कुछ देवताओं की पूजा–नैवेद्य, पुष्पपत्र, पकवान आदि से की जाती है किन्तु कुछ को बलि देकर संतुष्ट करना पड़ता है। इनमें से कुछ प्रकृति पूजा के प्रतीक हैं, कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पात्र हैं। अपने जीवन काल में वीरता, न्याय, शासन या अन्य विशिष्ट गुणों के कारण अत्यंत लोकप्रिय देवता के रुप में पूजे जाते हैं। जैसे– गुस्याणी, गोलू, हरु, सैम, गंगनाथ, भोलानाथ, नन्दा, चौमू, भूमियाँ, बधाण, नौलदान, नागराजा, खेतरपाल, निरंकार, कालचिन, बालचिन, नारसिंह, सिंदुवा–विंदुवा, कोटगाड़ी, हटकाली, बाराही, भैरवनाथ, उफराई देवी, गोरल देवता आदि। इनके जीवन चरित्रों का बखान करने वाली गाथाऐं और गीत गाकर इनकी स्तुति की जाती है।

## 6.8 जागर

इस क्षेत्र के अधिकांश लोक देवताओं को जागर गाकर नचाया और प्रसन्न किया जाता है। गायक या कथावाचक भावनाओं से भरे गाथा सुनाते हैं। कई बार इन दैवी मनुष्यों की आत्मा वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में से किसी पर भी अवतरित होती है और फिर वह व्यक्ति मृतात्मा की भाँति हाव–भाव तथा बातचीत करने लगता है। लोग उसे देवता मानकर फूल–अक्षत चढाते हुए नमन करते हैं और अपनी–अपनी जटिल समस्याऐं व्यक्त कर उनके कारण व निवारण के उपाय पूछते हैं। अवतार उन्हें यथानुकूल जवाब भी देता है। लोकविश्वास के अनुसार इन देवताओं के मन्दिरों में मनौती मांगने पर वह अवश्य पूरी हाती है। मनौती पूरी हो जाने पर भक्त देवता के मन्दिर में बकरी, मुर्गी, आदि की बलि एवं भक्त नारियल चढाते हैं अथवा झंडी, चिमटा, चुनरी या घंटी चढाता है। नारियल की बलि नर बलि की प्रतीक भी मानी जाती है और जो लोग मांस भक्षी नहीं हैं या प्राणी की बलि देना उचित नहीं मानते, वे भी बलि के प्रतीक स्वरुप नारियल तोड़कर चढ़ाते हैं। जिन गीतों एवं क्रियाओं का उपयोग देवी देवताओं के सूक्ष्म शरीर को प्रकाश में लाने के लिये किया जाता है, वे गीत एवं गाथाऐं जागर कहलाती हैं। इस प्रकार जागर एक ऐसा माध्यम है, जिसके अंर्तगत गीत संगीत से सूक्ष्म आत्मा, पश्वा (जिस व्यक्ति के उपर सूक्ष्म आत्मा का प्रभाव होता है) को अपने प्रभाव में लेकर कम्पन्न करने लगता है। पश्वा के अलौकिक नृत्य एवं क्रियाओं के पश्चात् ही ज्ञात होता है कि अमुक व्यक्ति को अमुक दैवीय शक्ति ने अपने प्रभाव में ले लिया है। जागर लोकगीत इसी प्रक्रिया को सम्पन्न कराते हैं, जिसमें विशेष वाद्यों का संगीत उत्प्रेरक का कार्य कराता है। उत्तराखण्ड में गाए जाने वाले जागर इस प्रकार हैं : देवताओं के जागर, देवियों के जागर पौराणिक जागर, ऐतिहासिक घटनाओं पर अधिरित जागर।

स्थानीय देवी देवताओं के राजवंशी और भूतांगी दो रुप माने गये हैं। भूतांगी देवताओं में भूत, प्रेत, मसाण, अंछरी या परियाँ आदि आते हैं। ये अति मानवीय शक्तियां कही गयी हैं। स्थानीय लोक साहित्य एवं गाथाओं में इनका महत्वपूर्ण वर्णन है।धार्मिक, सांस्कृतिक एंव पौराणिक दृष्टि से गढ़वाल–कुमाँऊ अंचल को ही देवभूमि 'उत्तराखण्ड' होने का गौरव प्राप्त है। युग–युगों से चले आये इस सम्मान वाले उत्तराखण्ड की महिमा का हमें आदर करना चाहिए।

## 6.9 सारांश

धर्म एक बहुत व्यापक शब्द है। धर्म शब्द के अनेक अर्थ दिये गये है, यथा सुकृतया पुण्य, न्याय, स्वभाव, आचरण, सत्संग, दान आदि धर्म का धातुगत अर्थ धारण करना ही होता है। निरूक्त में धर्म शब्द का अर्थ नियम बताया गया है । इससे धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ यह समझ सकते है– जिस नियम ने इस लोक या संसार को धारण कर रखा है वही धर्म है । वेदों में लिखा है कि धर्म का अर्थ सुख होता है । उत्तराखण्ड एक सांस्कृतिक राज्य माना जाता है, वस्ततुः इस राज्य के साथ लगा पश्चिमी नेपाल का काली नदी तक विस्तृत प्रदेश भी कुछ शताब्दी पूर्व तक उत्तराखण्ड के साथ जुड़ा था। पुरातत्व की दृष्टि से समृद्व होते हुए भी इस क्षेत्र का सामाजिक इतिहास धुँधला है। यह क्षेत्र प्राचीन काल से ही तीर्थों का स्थान एंव दर्शनीय स्थलों का आकर्षक केन्द्र रहा है। उत्तराखण्ड में हिन्दु धर्म में समस्त त्यौहार एंव उत्सव एंव व्रत तो मनाये ही जाते है, साथ में कुछ स्थानीय त्यौहार मनाये जाते हैं। यह त्यौहार न केवल आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण एवं मनोरंजन करने में सहायक हैं वरन् यह दूर देश में रहने वाले परिजनों को परस्पर

मिलाने में भी योगदान देते हैं। धार्मिक, सांस्कृतिक एंव पैराणिक दृष्टि से गढ़वाल–कुमाँऊ अंचल को ही देवभूमि होने का गौरव प्राप्त हुआ है।

## 6.10 तकनीकी शब्दावली

**जागर** –प्राचीन कर्मकाण्ड जिसमें डंगरिया भाव–समाधि में जाकर लोगों की समस्याएं दूर करता है।

**मुखौटे**– विभिन्न अवसरों पर चेहरे में लगाये जाने वाली विभिन्न रूपाकृतियां।

**परलोक**– अन्य लोक

**उपासना**–पूजा–पद्यति

**अवतरित**–अवतार लेना

## 6.11 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

**6.4** के प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए 6.4.5

**6.4** के प्रश्न 2 के उत्तर के लिए देखिए 6.4.13

**6.5** के प्रश्न 1 के उत्तर के लिए देखिए 6.5.3,6.5.4,6.5.5,6.5.6

## 6.12 संदर्भ ग्रंथ सूची


1.बलुनी, दिनेशचन्द्र, *उत्तरांचलः संस्कृति, लोक जीवन, इतिहास एंव पुरातत्व*, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2006

2.अशोक, यमुनादत्त वैष्णव, *कुमाँऊ–गढ़वाल के दर्शनीय स्थल*, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1978

3.जोशी, एम.पी., *उत्तरांचल हिमालया*, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, 1990

4.जोशी, घनश्याम, *उत्तरांचल का राजनीतिक, सामाजिक एंव सांस्कृतिक इतिहास*, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2003


## 6.13 सहायक / उपयोगी ग्रंथ सूची


1.शर्मा, डी.डी., *उत्तराखण्ड का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास*, 2003

2. वही , *उत्तराखण्ड के लोक देवता*, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2006

3. वही ,*हिमालय संस्कृति के मूलाधार,* सोलन, 1998

4.पाण्डेय,बी.डी., *कुमाँऊ का इतिहास*, शक्ति प्रेस,अल्मोड़ा,1937

5.रतूड़ी,हरिकृष्ण,*गढ़वाल का इतिहास*, भागीरथी प्रकाशन, पौड़ी,वि,1954


## 6.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. धर्म से आप क्या समझते है? उत्तराखण्ड के धार्मिक जीवन की विवेचना कीजिए।

2. उत्तराखण्ड के मेलों की व्याख्या कीजिए।

# इकाई–सात : उत्तराखण्ड : कला,साहित्य एवं संगीत


7.1 प्रस्तावना

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 लोक संस्कृति के घटकः लोक कला

7.3.1 मूर्तिकला

7.3.2 चित्रकला

7.3.3 काष्ठ कला

7.3.4 स्थापत्य कला

7.3.5 धातु शिल्प

7.3.6 ऐपण

7.3.7 भित्ति चित्र

7.3.8 उत्तराखण्ड की लोक चित्र शैली

7.3.9 अन्य हस्तकलाऐं

7.4 लोक साहित्य

7.4.1 लोक गीत

7.4.2 लोक गाथा

7.4.3 लोक कथा

7.5 लोक नृत्य एवं नाट्य

7.6 संगीत

7.7 सारांश

7.8 तकनीकी शब्दावली

7.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

7.11 सहायक / उपयोगी

## 7.12 निबंधात्मक प्रश्न

## 7.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज की संस्कृति मूलतः उसकी आचरण पद्धतियों, रीति–रिवाजों, पर्वों,मेले,गीतों–नृत्यों और कला के विविध रुपों में निहित होती है। प्रथा, परम्परा, दुःख–दर्द, रुढ़िवादिता, सामाजिक समस्याओं का वास्तविक ज्ञान भी इससे हो जाता है।उत्तराखण्ड का साहित्य, कलाऐं और संगीत इस बात के साक्ष्य हैं कि यहां का जीवन श्रम,उत्साह,सरल तथा विषम परिस्थितियों में सामन्जस्य करने की अद्‌भुत क्षमता से समन्वित है।

उत्तराखण्ड के लोक साहित्य के गंभीर अध्ययन से स्पष्ट आभास मिल जाता है कि कुमाऊँ और गढ़वाल का लोक जीवन एक जैसा ही है। धार्मिक मान्यतायें, लोक नृत्य–गीतों में पर्याप्त समानता है। लोक विश्वास पूर्णतः एक जैसे हैं। भौगोलिक स्थितियों के फलस्वरुप कहीं–कहीं सूक्ष्म अंतर होना स्वाभाविक है। इसलिये संभवतः लोकगीतों और नृत्यों में अलग–अलग शैलियों ने जन्म ले लिया । परन्तु ऐसी भिन्नता के दर्शन तो कुमाऊँ और गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में भी हो जाते हैं। यहां तक की स्थानीय देवताओं की पूजा अर्चना भी दोनों मण्डलों में एक जैसी होती है। कुमाऊँ का पर्चाधारी गैरीया गढ़वाल में गौरिल देवता के रुप में सम्मान प्राप्त करता है।

देवी–देवताओं के जागर गीतों में भी पर्याप्त समानता के दर्शन होते हैं। वेदकाल, पुराणकाल, शक, हूण, कुषाण, अशोक, हर्षवर्धन और गुप्तकाल आदि समयों में जितने भी परिर्वतन भारत में हुये हैं, उन सभी परिर्वतनों में उत्तराखण्ड के इन दोनों मण्डलों ने भी समय के साक्षी होने का गौरव प्राप्त किया है।

## 7.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्‌देश्य विभिन्न स्रोतों के माध्यम से उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति का परिचय कराना हैं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

- लोक संस्कृति के विभिन्न घटक जिनमें मूर्तिकला, चित्रकला ,काष्ठ कला, स्थापत्य कला, धातु शिल्प, ऐपण, भित्ति चित्र एवं अन्य हस्तकलाऐं शामिल हैं।
- लोक साहित्य के अंतर्गत सम्मिलित लोक गीत, लोक गाथा, एवं लोक कथा
- लोक नृत्य एवं नाट्य

## 7.3 लोक संस्कृति के घटकः लोक कला

लोक संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए अब हम उसके विभिन्न घटकों के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे–

### 7.3.1 मूर्तिकला

उत्तराखण्ड में स्थापित मंदिरों से अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ पाषाण, काष्ठ एंव धातुओं से निर्मित की गयी हैं। पाषाण युगीन चित्रकला के उदाहरण हिमालय की अनेक कन्धराओं से प्राप्त हुए हैं, किन्तु मूर्तिकला के ऐतिहासिक युग से पूर्व के अवशेष नहीं मिलते हैं। सर्वप्रथम मौर्य युगीन मृणमूर्तियाँ, रणिहाट उत्खनन से प्राप्त हुई हैं।

पाषाण से निर्मित मूर्तियाँ सर्वाधिक प्राप्त हुई हैं । ये मूर्तियाँ प्रथम शताब्दी विक्रमी से बनना प्रारम्भ हो गयी थी, मूर्तियों का निर्माण स्थानीय चटटानों से किया गया है। मूर्तियों का निर्माण रक्त, श्याम, हरे वर्ण के पाषाणें से हुआ है। यहा से प्राप्त मूर्तियों का विषय धार्मिक है। ये मूर्तियाँ बौद्ध, जैन एंव ब्राहमण धर्म से संबंधित हैं। श्याम वर्ण के पाषाण से निर्मित मूर्तियों में अमेल ''नैनीताल'' की श्रृंगार रथ दुर्गा, पश्चिमी उत्तराखण्ड के तपोवन की महिषमर्दिनी दुर्गा एंव खला गाँव की त्रिपुरबाला सुन्दरी देवी की मूर्ति प्रमुख है। हरे वर्ण की मूर्तियाँ बैजनाथ में विशेष रूप से प्राप्त हुईं। गुप्त काल से पूर्व मूर्तियाँ बिनसर, गोपेश्वर, ऋषिकेश, लाखामण्डल, पिथौरागढ़ व गुप्तोतर कालीन मूर्तियाँ जागेश्वर, बैजनाथ, गोपेश्वर, कटारमल आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। पाषाण के अतिरिक्त काष्ठ व धातु से निर्मित मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। कटारमल ''अल्मोड़ा'' से एक काष्ठ निर्मित स्तम्भ प्राप्त हुआ है इस स्तम्भ में पुरूष, मकर वल्लरी, नाग वेष्टित पूर्ण घट उत्कीर्ण है ये कलासौन्दर्य का अनुपम उदाहरण माना जाता है। गढ़वाल से प्राप्त स्थानक विष्णु तथा हरिहर, पिथौरागढ़ से प्राप्त विष्णु प्रतिमा, और गुनाग्राम अल्मोड़ा से प्राप्त विष्णु प्रतिमा महत्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड में कुमाँऊ व गढ़वाल में विभिन्न प्रकार के स्थानीय देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनाकर उनके डोले घुमाये जाते हैं। ये मूर्तियाँ कभी विसर्जित कर दी जाती हैं और कभी पुनः स्थापित की जाती हैं। पार्थिव लिंग, सेली, लक्ष्मी की मूर्ति विवाह के अवसर पर बनने वाले समधी–समधन तथा विजयदशमी के अवसर पर बनने वाले पुतलों को भी मूर्ति निर्माण की लोककला के अर्न्तगत माना जाता है। मूर्ति–निर्माण के प्रमुख केन्द्र जागेश्वर, गोपेश्वर, मोरध्वज, लाखामण्डल इत्यादि थे।

### 7.3.2 चित्रकला

मानव निर्मित चित्रकला का जन्म गुफाओं में हुआ। इसके प्रमाण हमें कुमाऊँ व गढ़वाल के अनेक शैलाश्रयों में मिलते हैं। उत्तराखण्ड में लखुउड्यार नामक स्थान से पाषाण कालीन चित्रों का पता चला है। ये आकृतियां पक्के रंग के कारण आज भी सुरक्षित है। पर्वत वासी मानव भवन निर्माण आदि सभ्य तकनीकें जानने से पूर्व ही अपनी अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति करने लगा था।इस तथ्य के साक्षी गुफाओं के चित्र हैं। जिसमें चित्र कला के साथ–साथ नृत्यकला के भी दर्शन होते हैं। ये चित्र भारत के अन्य क्षेत्रों की ग्रफाओं के चित्रों से साम्य के आधार पर अपनी प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। बाद के युगों में जैस–जैसे मनुष्य सभ्य होता गया वैसे–वैसे उसकी कलाओं का विस्तार और भी बढता गया। लेकिन चित्र कला के क्रमबद्ध विकास की कड़ियां अनेक बार टूटती दिखाई देती हैं। क्योकि बीच की अवधि के कोई अवशेष प्राप्त नहीं होते। वास्तुकला और मूर्तिकला आदि के परिमार्जन और विकास को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि उस काल में यहा पर चित्रकला का रूप भी उच्चकोटि का रहा होगा, किन्तु पक्के रंगों और उचित संरक्षण के अभाववश उसके कोई चिन्ह सुरक्षित नहीं रह पाये। मध्य काल तथा आधुनिक काल में यहाँ जिस लोक चित्रकला की परम्परा चली उस पर यहा के धार्मिक जीवन की छाया स्पष्टतः दिखाई देती है। लोककला के साथ–साथ परिनिष्ठत कला भी पनपी, किन्तु उसका विस्तार और विकास बहुत कम हुआ। उत्तराखण्ड में चित्रकला की खोज बैरिस्टर मुकुन्दीलाल ने 20वीं सदी के प्रारम्भ में की थी। उत्तराखण्ड में चित्रकला की उत्पत्ति 1658ई0 में हुई। दो चित्रकारों श्यामदास व हरदास तथा इनके वंशजों को उत्तराखण्ड शैली का जन्मदाता माना जाता है।ऐतिहासिक काल में विकसित उत्तराखण्ड की चित्रकला शैली को गढ़वाल शैली के नाम से जाना गया है।

### 7.3.3 काष्ठ कला

काष्ठ कला भी मानव जीवन के साथ आदिम अवस्था से ही जुड़ी हुई है। समय के साथ धीरे–धीरे काष्ठ को काटकर, कुरेदकर और छीलकर बर्तन बनाये जाने लगे जिनमें खाद्य वस्तुयें रखी जाती थीं। उत्तराखण्ड में प्राचीन युग से लेकर आज तक काष्ठ पात्रों का निर्माण और उपयोग होता रहा है। प्रारम्भ में सादगी पूर्ण बर्तन, फिर उसमें कलात्मक अंलकरण और तदनन्तर मूर्तियों की रचना होने लगी। आज भी यहाँ के अस्कोट, दानपुर, जौनसार भाबर, चमोली और उत्तरकाशी आदि सीमान्त क्षेत्रों की जनजातियाँ लकड़ी के बर्तन बनाने का व्यवसाय करती हैं। स्थानीय ग्रामवासी अनाज के भण्डारण से लेकर दूध तथा दुग्ध पदार्थो के लिए काष्ठ पात्रों का अधिक प्रयोग करते है। बड़े–बड़े भकार, दही रखने की ठेकी, पाली, मटठा बनाने की मथनी, डोकई या बिनारा, घी रखने की हड़पिया, फरूवा, मुमलि और नापतोल का माणा, नाली, पसेरी, हवन, पूजा इत्यादि के लिए स्रुवा, सूची, सरणी आदि पात्र इस बात के द्योतक हैं कि यहाँ प्राचीन काल से ही इन काष्ठ उपकरणों का निर्माण किया जाता रहा है और शनैः शनैःकाष्ठकला ने एक लोक कला का रूप धारण कर लिया। इस कला के दो रूप हैं–

1. उपयोगी रूप
2. सुशोभन रूप

काष्ठ–शिल्प के प्रमुख उदाहरण यहाँ विद्यमान स्थानीय शैली में निर्मित परंपरागत आवासीय भवन एवं यहाँ के प्राचीन मंदिर हैं । इनके अलावा कमाबेश काष्ठ–शिल्प के दर्शन फर्नीचर, बर्तन, मापक तथा अन्य घरेलू उपयोग के वस्तुओं, कृषि उपकरणों, धार्मिक वस्तुओं एवं अन्य कलात्मक वस्तुओ में भी होते हैं । इस अध्ययन द्वारा जो घटक प्रकाश में आये, उनका पुनः नामोल्लेख अग्रांकित है –

(1) प्रमुख प्रवेश–द्वार या खोली (2) अन्य द्वार (3) भवन के मुख्य भाग में विद्यमान विशाल खिड़कियां एकदरी, दोदरी, तिदरीइ त्यादि) (4) छोटी खिड़कियाँ (5) नकली खिड़किया (6) मौनपालक खड़कियाँ (7)स्तंभ (8) धरणी (9) उल्टी छत (10) छजली (11) धरणी (12) सीढ़ियां (13) मन्दिरों के शिखर में विद्यमान काष्ठ–छत्र ।

**गृह उपयोगी एवं अन्य वस्तुओं में**

(1) अलमारियाँ ( 2) अन्य फर्नीचर (3)घरेलू बर्तन (4) मापक बर्तन (5) कृषि–उपकरण (6)संग्रहण हेतु कोठार एवं भकार (7) धार्मिक वस्तुऐं (8) कलात्मक वस्तुऐं इत्यादि सम्मिलित की जा सकती हैं।

सुशोभन व अंलकारिक रूप के अंतर्गत मूर्तियाँ एंव दरवाजों, खिड़कियों के अंलकरण माने जाते थे। उत्तराखण्ड के परंपरागत काष्ठ–शिल्प के घटकों में अनेक मांगलिक चिह्नों, प्रतीकों एवं कलात्मक प्रतिमानों का उत्कीर्णन दिखाई देता है । इनमें से कुछ चिह्न/प्रतीक या कला–प्रतिमान केवल अलंकरण की दृष्टि से बनाये गये हैं, जबकि अनेक चिह्नों/प्रतीकों के पीछे वास्तु शास्त्र के कुछ निश्चित नियमों के प्रावधान की कल्पना की जा सकती है । यहाँ पर हम उत्तराखण्ड के काष्ठ–शिल्प में दर्शाये गये कुछ प्रमुख कला–प्रतिमानों का विश्लेषण करने का प्रयास करेंगे, यथा–

भारत में स्वास्तिक का मांगलिक चिह्न के रूप में प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से देखा जा सकता है । इस दृष्टि से मध्यहिमालय के भवन भी महत्वपूर्ण हैं, यहाँ के विभिन्न स्थानों में बने अनेक परंपरागत आवासीय भवनों की खोलियों (मुख्य प्रवेश–द्वार) में स्वास्तिक चिह्न का उत्कीर्णन देखा जा सकता है । स्वास्तिक का प्रयोग निर्विघ्न कार्य समाप्ति के लिए किया जाता है । शुभकार्यों का प्रतीक, स्वास्तिक, भवन के मुख्य–द्वार में इसलिए बनाया जाता है, ताकि उसकी अनिष्ट कारक दृष्टि से रक्षा हो सके और भवन में सुख–समृद्धि का बाहुल्य रहे । स्वास्तिक दो रेखाओं द्वारा बनाया जाता है । दोनों रेखाओं को मध्य में समकोण स्थिति में विभाजित करके, दोनों रेखाओं के सिरों पर बाँयी ओर से दाँहिनी ओर समकोण बनाती रेखाओं को आगे इस प्रकार बढ़ाते हैं कि वह आगे की रेखा को छूने से पूर्व ही रूक जाय । स्वास्तिक को किसी भी स्थिति में रखें, उसकी रचना एकसी रहती है । स्वास्तिक के सिरों पर निर्मित समकोण पर मुड़ी हुई रेखायें अन्तहीन बताई गई हैं, जिसका कोई स्पर्श या संधि–बिन्दु नहीं होता है, क्योंकि ब्रह्माण्ड अनंत है । स्वास्तिक, सृष्टिचक्र के गूढ़ रहस्य का द्योतक है । स्वास्तिक में निहित अलौकिक शक्ति के कारण ही यह धार्मिक आस्था का प्रतीक बना ।'स्वस्ति' का प्रयोग कल्याण, आशीर्वाद, कुशल–क्षेम, शुभकामना, पुण्य, पाप–प्रक्षालन एवं दान स्वीकारोक्ति के रूप में भी किया जाता है । इसका शाब्दिक अर्थ है – जो स्वस्ति अर्थात् क्षेम का कथन करता है । स्वस्ति को 'गणेश' का लिप्यात्मक रूप भी माना जाता है । स्वास्तिक .चक्र की गतिशीलता बाँये से दाँये को बतलाई गई है । पृथ्वी को गति देने वाली ऊर्जा का प्रमुख स्रोत उत्तरायण से दक्षिणायण की ओर होता है । वास्तुशास्त्र में उत्तर दिशा का अत्यंत महत्व है, अतः इस दिशा में भवन को खुला रखा जाता है, ताकि चुम्बकीय ऊर्जा एवं अन्य अलौकिक शक्तियों को भवन में संजोया जा सके । ईसाईयों के भवनों में लगा 'क्रास' चिह्न भी स्वास्तिक से मिलता–जुलता है । वास्तु में, स्वास्तिक चिह्न को भवनों के द्वारों पर एवं मंगल–पर्वों पर भवनों की दीवारों पर अंकित किया जाता है, आकाश से पृथ्वी तक ब्रह्माण्ड के चतुर्भुजीय आकार, धन चिह्न (+) की भाँति का स्वास्तिक चारों दिशाओं का प्रतीक है और जब इस चिह्न में चार भुजायें दक्षिणावर्ती होकर जुड़ जाती हैं, तो यह सूर्य का प्रतीक बन जाती हैं, क्योंकि सूर्योदय एवं सूर्यास्त की गणना भी दक्षिणावर्ती गति से ज्ञात होती है । स्वास्तिक का प्रयोग दिशापति देवों (अग्नि, इन्द्र, वरुण व सोम) की पूजा के लिए भी किया जाता है ।

उत्तराखण्ड के आवासीय भवनों एवं मंदिरों में प्राप्त दरवाजों, तिवारियों एवं खिड़कियों के द्वार–चौखटों में लगे स्तंभों के निचले भागों का आकार मंगल–कलश/घट–पल्लव की भांति का सर्वसामान्य रूप से प्रायः सभी उदाहरणों में पाया जाता है, यह मध्यहिमालय के काष्ठ–घटकों में संभवतः सर्वाधिक प्रचलित कला–अभिप्राय है। जल से परिपूर्ण एवं आम्रपत्र, पुष्प तथा नारियल से आच्छादित मंगल–कलश, वैदिक–काल से ही शुभता, समृद्धि एवं सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता रहा है । सृष्टि का उद्भव जल से हुआ माना गया है, अतः जल, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का प्रतीक है । आम एक सदाबहार वृक्ष है और उसके पत्ते (पल्लव) सृजन के पश्चात जीवन की निरन्तरता के बोधक माने गये हैं । आम की लकड़ी को भी पर्याप्त पवित्र माना गया है, यज्ञादि कार्यों के लिए इसकी लकड़ी उत्तम बताई गई है । आम की पत्तियों द्वारा बंधनवार बनाने की परंपरा भी भारत में अत्यंत प्राचीन रही है । जलपूरित कलश के ऊपर आम के पत्ते (पल्लव),

मंगल–कलश को पूर्णता प्रदान करते हैं । घर को भी मंगलघट की संज्ञा दी गई है । प्रत्येक हिन्दू अनुष्ठान में कलश–स्थापन का विधान देखा जा सकता है।

उत्तराखण्ड के कुछ स्थानों में काष्ठ–घटकों में ॐ प्रतीक चिह्न भी उत्कीर्ण मिलता है । ॐ को हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में, 'शब्द– ब्रह्म' का प्रतीक माना गया है । इस, 'ओंकार' को जो पहचान लेता है, जो इसके रहस्य को जान लेता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त कर लेता है । ॐ, सम्पूर्ण ब्रह्म, ब्राह्माण्ड, प्रणव–मंत्र एवं अपरिमित शक्ति का प्रतीक है। यह एक ऐसा शब्द है जिसको देखने एवं आचरण करने (जपने) मात्र से मन एकाग्रता की ओर तत्पर हो जाता है और शान्ति–समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता है ।

उत्तराखण्ड के कुछ आवासीय भवनों में मछली (मीन) का अंकन भी हुआ है । मीन सच्चे प्रेम का प्रतीक माना गया है। यात्रा आरंभ करने से पूर्व, मत्स्य–दर्शन, कार्य सफलता का शुभ–शगुन माना जाता है । भवन के मुख्य–द्वार या अन्य स्थलों में मीन'–चिह्न को उत्कीर्ण के करने के पीछे संभवतः यही उद्देश्य रहा है, कि यदि मत्स्य के प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते हैं, तो उसके चित्र में दर्शन कर शुभ–शगुन कर लिया जाय । पौराणिक मान्यता के अनुसार भी विष्णु का प्रथम अवतार 'मत्स्य अवतार' ही है, प्रलय के समय मीन ने ही मनु की रक्षा की थी । यह कामदेव की ध्वजा का प्रतीक भी माना गया है । स्त्रियों के कर्णाभूषणों में, मत्स्य–कुण्डल के पहनने की परंपरा मिलती है । भवन में मीन का अंकन शुभता में वृद्धि करता है।

उत्तराखण्ड के आवासीय भवनों एवं मंदिरों में विद्यमान, काष्ठ–घटकों के अलंकरण के लिए ज्यामितीय अभिप्रायों का भी अधिकाधिक प्रयोग किया गया है । इन अभिप्रायों के निर्माण में सीधी सरल, आड़ी–तिरछी, गोलाईयुक्त रेखाओं का प्रयोग किया गया है । रेखाओं के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के त्रिभुजों, चतुर्भुजों, पंचभुजों इत्यादि तथा गोलाकार आकृतियों द्वारा अनेक प्रकार का अभिप्रायों का निर्माण यहाँ के काष्ठ–शिल्पकारों ने किया है । नाना प्रकार के कोण यथा–षट्कोण, अष्टकोण आदि भी काष्ठ–उत्कीर्णन में अवतरित हुए हैं । इनमें षट्कोण जहाँ एक ज्यामितीय आकृति है, वहीं धार्मिक रूप से भी इस आकृति का महत्त्व है, प्रायः प्रत्येक हिन्दू–अनुष्ठान में षट्कोण लिखकर उसके ऊपर कलश की स्थापना की जाती है ।

उत्तराखण्ड के काष्ठ–शिल्प में अनेक देवी–देवताओं, स्त्री–पुरुषों, पशु–पक्षियों एवं अन्य जीव–जन्तुओं के चित्रण को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है । यहाँ पर पुनः यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि इन सजीव आकृतियों के निर्माण में न तो शारीरिक अनुपात का ध्यान रखा गया है और न ही शारीरिक बनावट एवं गोलाई का, निश्चय ही इसके अपवाद मिलते हैं, लेकिन सामान्यतः अधिकांश उदाहरणों में यही प्रवृत्ति पाई जाती है। उत्तराखण्ड के काष्ठ–घटकों में उत्कीर्ण सजीव–आकृतियों के विषय में यह कहा जा सकता है कि ये अत्यधिक, 'स्टाइलाइज्ड' हैं। उत्तराखण्ड के भवनों के द्वारों, खिड़कियों, स्तंभों, धरणियों, काष्ठ–पट्टों इत्यादि घटकों में जिन देवी–देवताओं का अंकन हुआ है, उनमें गणेश, सिंहवाहिनी दुर्गा, हनुमान, पद्मासनस्थ लक्ष्मी, शिव, गंगा–जमुना, सूर्य, चंद्र, सप्तमात्रकाओं में से अनेक मात्रकायें, विष्णु के दशावतारों में से अनेक अवतार और दशावतार भी उत्कीर्ण मिलते हैं । इसके अलावा अनेक स्थलों में स्थानीय

देवों को भी उत्कीर्णन का माध्यम बनाया गया है । काष्ठ–घटकों में सामान्य स्त्री–पुरुषों को पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है, इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अल्मोड़ा नगर के खजांची मुहल्ला और चीनाखान मुहल्ला के कुछ पुराने भवनों में सामने की काष्ठ–आच्छादित दीवार में बनी मानवाकृतियाँ हैं, जो उत्तरांचल के काष्ठ–शिल्प के प्रतिनिधि उदाहरण कहे जा सकते हैं । इनके अलावा विभिन्न वेश–भूषाओं, मुद्राओं, अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों से युक्त एवं नाना पशुओं में सवार, स्त्री–पुरुषों की आकृतियों को भी यहाँ काष्ठ–उत्कीर्णन में देखा जा सकता है ।

उत्तराखण्ड के काष्ठ–शिल्प के घटकों में पशु–पक्षियों की आकृति को भी उत्कीर्णन का विषय बनाया गया है। अनेक स्थानों में तो स्वयं, काष्ठ–घटकों को तोते, हाथी, मयूर, हंस, वृषभ आदि पशु–पक्षियों की आकृतियों में बनाया गया है, ऐसा विशेष रूप से द्वार–चौखट के साथ लगी पार्श्ववर्त्ती झालरों में देखा जा सकता है। यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है, कि ऐसी आकृतियों में 'लोच और वास्तविकता' (Plasticity & Naturalism) की कमी दिखाई देती है।जिन पशु–पक्षियों को स्थानीय काष्ठ–उत्कीर्णन में स्थान मिला है, उनमें प्रमुखतः हाथी, बाघ, ऊँट, घोड़ा, गाय–बैल, सुअर, हिरन, बन्दर, बकरी, मोर, तोता, हंस, गरुड़, कबूतर इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त सर्प, मछली भी कुछ स्थानों में अलंकरण का विषय बनी हैं ।

अनेक प्रकार के बेल–बूटे, पत्र–पुष्प इत्यादि भी काष्ठ–अलंकरण में बहुतायत से प्रयुक्त किए गए हैं, पद्म–पुष्प का अंकन सर्वाधिक हुआ है । नाना–भांति के अस्त्र–शस्त्र युक्त मानवों का प्रदर्शन भी यहाँ के काष्ठ–शिल्प की विशेषता है । जिन अस्त्र–शास्त्रों को स्पष्टतः पहचाना जा सकता है, उनमें धनुष–बाण, तलवार, गदा, ढाल, त्रिशूल, कटार, बन्दूक आदि प्रमुख हैं । शस्त्रास्त्रों को बनाने का कारण, भूत–प्रेत (छल–छिद्र) इत्यादि से भवन की रक्षा करना बतलाया गया है ।

### 7.3.4 स्थापत्य कला

उत्तराखण्ड में वर्तमान में विद्यमान सभी मन्दिर निर्विवाद रूप से प्रस्तर निर्मित हैं । इसका एक प्रमुख कारण प्राचीन काल से ही सभी प्रकार के श्रेष्ठ प्रस्तर–'कटौ, कमरस और सागर' का यहाँ आसानी से प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना है । उत्तराखण्ड में स्थानीय खानों से निकाले गये प्रस्तर खण्डों को आवश्यकतानुसार तराश कर मन्दिर–निर्माण में प्रयुक्त किया गया है । उल्लेखनीय है कि भवनों के विपरीत यहाँ मन्दिरों की चिनाई में किसी प्रकार के 'गारे' का उपयोग नहीं किया गया है । मन्दिरों में प्रयुक्त बड़े–बड़े शिलाखण्डों को जोड़ने के लिए यहाँ लौह–शलाकाओं का प्रयोग किया गया है । यह तकनीक विशेष दृष्टव्य है क्योंकि लौह–शलाकाओं के बन्धन ने मन्दिरों में प्रयुक्त प्रस्तर–खण्डों को इतनी सुद्रढ़ता प्रदान की है कि हिमालय के इस भूकम्पग्रस्त क्षेत्र में स्थिति होने के बावजूद भी ये मन्दिर शताब्दियों से अपने मूल रूप में खड़े रह सके हैं ।

उत्तराखण्ड में सभी प्रकार की श्रेष्ठ इमारती लकड़ी प्राचीन काल से ही प्रचुर मात्रा में आसानी से उपलब्ध रही है । यहाँ के अनेक मन्दिरों के शीर्ष पर वर्षा एवं हिमपात से सुरक्षा के लिए लकड़ी के छत्र लगाये गये मिलते हैं । कटारमल मन्दिर–समूह से 9वीं सदी ईस्वी के काष्ठ–निर्मित मन्दिर–स्तंभ और 14वीं–15वीं सदी ईस्वी के लकड़ी के

दरवाजे प्राप्त हुए हैं । उपरोक्त तथ्यों से 7वीं सदी ईस्वी के उत्तराखण्ड में काष्ठ निर्मित मन्दिरों के निर्माण की कल्पना की जा सकती है । यह कल्पना तब और भी पुष्ट होती है जब यह तथ्य उद्घाटित होता है कि उत्तराखण्ड के उत्तरकाशी जनपद में अनेक प्राचीन काष्ठ–निर्मित मन्दिर विद्यमान हैं ।

जहाँ तक मन्दिर–निर्माण में ईंटों के प्रयोग का प्रश्न है यह परिकल्पना की जा सकती है कि उत्तराखण्ड में भी प्राचीनकाल में मन्दिरों के निर्माण में ईंटों का प्रयोग किया जाता रहा होगा । पुरातात्त्विक उत्खननों में उत्तराखण्ड के अनेक स्थानों – वीरभद्र , मोरध्वज , काशीपुर से इस प्रकार के प्रमाण मिले हैं । इसके अलावा उत्तराखण्ड के अनेक स्थानों से ईंटों की ऐसी संरचनाऐं प्रकाश में आयीं हैं जो सम्भवतः मन्दिर रही हों । उत्तराखण्ड के अनेक गांवों में खेतों की जुताई के समय ईंटों के टुकड़े आदि का मिलना प्राचीनकाल में यहॉ ईट निर्माण का संकेत देता है । प्रस्तर और काष्ठ के अतिरिक्त यहाँ के मन्दिरों में अति अल्प मात्रा में लोहे का प्रयोग लौह–शलाकाओं के रूप में मिलता है । उपरोक्त सामग्री के अलावा किसी प्रकार के गारे या पलस्तर का प्रयोग यहाँ के मन्दिरों में नहीं हुआ है ।

कुछ अपवादों को छोड़कर उत्तराखण्ड के मन्दिर मोटे तौर पर विशिष्ट उत्तर–भारतीय मन्दिर शैली में ही बने हैं, जिसे मालु–प्रतिहार, नागर अथवा इण्डो–आर्यन शैली कहा जा सकता है । हिमांचल और उत्तराखण्ड के मन्दिरों का विश्लेषण करते हुए इन्हें सम्मिलित रूप से 'हिमांचल शैली' के नाम से अभिहित किया गया है । इस सन्दर्भ में एम.पी. जोशी 'वास्तुशिरोमणि' नामक ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि उत्तराखण्ड में इस प्रकार के ग्रन्थ के अस्तित्व से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उत्तराखण्ड में भी वास्तुशिल्प की अपनी परम्परा थी और वास्तुशिल्प का स्थानीय विकास शास्त्रीय आधार पर भारत के अन्य क्षेत्रों की तरह गुप्तकाल के पश्चात् हुआ । प्रतीत होता है कि गुप्तोत्तर काल में जिस स्थानीय वास्तुशिल्प का विकास उत्तराखण्ड में प्रारंभ हुआ वह कत्यूरी काल में पूर्ण विकसित होकर उत्तराखण्ड की सर्वमान्य शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुआ । कत्यूरी शासकों के विषय में अनुश्रुति है कि वे प्रतिदिन सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक एक मन्दिर का निर्माण करवाते थे । वर्तमान में विद्यमान सर्वाधिक भव्य, कलात्मक और उच्चकोटि के मन्दिर वस्तुतः कत्यूरी–काल से ही सम्बन्धित हैं । कत्यूरियों के उत्तराधिकारी चन्दों और पंवारों ने भी मूलतः कत्यूरी–वास्तुशिल्प के आधार पर ही अपने मन्दिरों का निर्माण किया था । अतः कत्यूरी काल में विकसित उत्तराखण्ड के मन्दिर–वास्तुशिल्प को 'कत्यूरी वास्तुशिल्प' के नाम से अभिहित किया गया है ।

उत्तराखण्ड में प्राचीन काल में अनेक मन्दिर, भवन,किले एवं नौले निर्मित किये गये ,जिनमें से अनेक मन्दिर,भवन,किले एवं नौले अभी भी अस्तित्व में हैं। ये स्थापत्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उत्तराखण्ड के अल्मोड़ा,टिहरी एवं चम्पावत जैसे नगरों में प्राचीन किले एवं मन्दिर तथा अनेक अन्य नगरों तथा स्थानों में मन्दिर व नौले देखने को मिलते हैं। इन्हें गुप्तोत्तर कालीन स्थापत्य की श्रेणी में रखा जा सकता है। उत्तराखण्ड में स्थापत्य कलाओं पर प्रकाश डालने वाले कुछ ग्रंथों में 'वास्तु शिरोमणि' प्रमुख है। इसकी रचना पंवार वंश के राजा श्यामशाह के काल की कही जाती है। संस्कृत भाषा में लिखे गये इस ग्रंथ की रचना सन् 1619 ई0 में की गई थी। उत्तराखण्ड के प्राचीन स्थापत्य की जानकारी प्रदान कराने में यहाँ निर्मित मंदिरों का महत्व सर्वाधिक है। शैव तथा वैष्णव संप्रदाय से संबंधित बहुसंख्य

मन्दिर उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थलों में निर्मित हैं।जिनमें से अधिकतर 6वीं–7वीं शताब्दी से 13वीं–14वीं सदी के मध्य के हैं।

### 7.3.5 धातु शिल्प

मध्य हिमालय की इस धरती में प्राकृतिक संम्प्रदाओं का विपुल भण्डार भरा हुआ है। जितनी संम्पदा दिखाई देती है, उतनी ही इसके भीतर भी संरक्षित है, जिसमें प्रमुख तौर पर अनेक प्रकार की धातुऐं और खनिज हैं। लौह युग और ताम्र युग में यहां धातुओं को तपा कर और ढ़ाल कर बर्तन बनाए जाने लगे थे। बनकोट नामक स्थान से प्राप्त हुई तांबे की मानवाकृति उत्तराखण्ड में मूर्ति निर्माण की सर्वप्रथम उदाहरण है। उत्तराखण्ड में तांबे की खानें थीं, जहा से तांबा निकाल कर उन्हे सरल आकृतियों में ढ़ाल कर गंगा घाटी आदि स्थानों में भेजा जाता होगा। यहां की टम्टा जाति का इतिहास ताम्र उद्योग के साथ जुड़ा हुआ है। यह उनका पारिम्परिक व्यवसाय रहा है। मध्य काल में विशालकाय मंदिरों की छतें एंव कलश, विशालकाय परात, गागर आदि बर्तन तथा कृषि एंव युद्ध के औजार यहीं से निकाली गई धातुऐं से बनाए जाते थे। पहाड़ों से लेकर तराई और गंगा घाटी में प्राप्त ताम्र संचय उपकरणों की बहुलता इस बात का स्पष्ट संकेत देती हैं कि यहाँ पर धातुशिल्प विकसित हो रहा था। तांबे की उत्कृष्ट कारीगरी के प्राचीनतम प्राप्त उदाहरण कुणिन्द कालीन सिक्के है। कुणिन्द सिक्कों के बाद के प्रमाण ताम्र पत्रों के रूप में मिलते हैं। इनमें तत्कालीन राजाओं के शासनादेश अंकित हैं, लाखामण्डल से प्राप्त ईश्वरा की प्रशस्ति, पाण्डुकेश्वर तथा तालेश्वर ताम्रपत्र आदि प्रमुख ताम्रपत्र हैं। 8वीं सदी के आस–पास निर्मित बाड़ाहाट (उत्तरकाशी) तथा गोपेश्वर के त्रिशूलों में कलश तथा पुरालिपि अंकित है। लोहाघाट के लुखानी नामक जंगल में हमें बिखरे हुए अनेक लौह खण्ड, उत्खनन से बने अनेक छोटे–छोटे गड्ढ़े तथा लोहा तपाने हेतु बनी बहुत पुरानी भट्टियों के बिखरे अवशेष आदि मिले हैं। लोहाघाट के अतिरिक्त अस्कोट, पिथौरागढ़, राईआगर तथा देहरादून में भी लोहे, तांबे आदि धातुओं की खानों के चिह्न मिलते हैं। धातु शिल्पियों ने काफी हद तक अपनी परम्परा को सुरक्षित रखा है, फिर भी स्थानीय निवासियों के दैनिक व्यवहार में इनका स्थान अब गौण होता जा रहा है, क्योंकि प्रत्येक छोटे स्थान पर भी बाजार बन गये हैं और बाजारों में अन्य प्रकार के आर्कषक और सस्ते बर्तन, आभूषण आदि तैयार मिलते हैं।

### 7.3.6 ऐपण

पर्वतीय क्षेत्रों में वर्तमान में जो कला सर्वाधिक प्रसिद्ध है वह लोक चित्र परम्परा 'ऐपण' या अल्पना है जो पूर्व मध्य काल में उद्भूत प्रतीत होती है। उत्तराखण्ड के मूल निवासी माने जाने वाली जातियों में आज भी अल्पना निर्माण की प्रथा प्रचलित है। इसकी प्रमुख लाक्षणिकता गेरू और बिस्वार द्वारा हाथ से अंकन करना हैं। बिस्वार भीगे चावलों को महीन पीसकर उससे बने पानी के घोल को कहते हैं। कुछ स्थानों पर बिस्वार के स्थान पर कमेट या सफेद मिट्टी का प्रयोग भी किया जाता है।सामान्य रूप से गेरू से लिपी भूमि पर ऐपण किये जाते हैं। उत्तराखण्ड में 'देहरी अलकंरण 'की परम्परा बहुत लोकप्रिय है। यहां पर 'देहरी ऐपण' का एक विशेष पर्व 'फूलदेई' है। विवाह, यज्ञोपवीत आदि पर लकड़ी के पट्टों पर 'ऐपण' बनाये जाते हैं।इसी प्रकार धुलिअर्ध्य की चौकी, जनेऊ तथा नामकरण के अवसर

पर सूर्य दर्शन की चौकी बनाई जाती हैं। विभिन्न स्थानों एंव सस्कारों पर अंकित किये जाने वाले एपणों को भिन्न–भिन्न नाम दिये जाते हैं जैसे– लक्ष्मी पूजा के लिए लक्ष्मी यंत्र या लक्ष्मी चौकी तथा शिवार्चन के लिए शिव पीठ कहा जाता है। ये ऐपण विभिन्न पर्वो एंव अनुष्ठानों पर किशोरियों एंव महिलाओं द्वारा लिखे जाते हैं।

## 7.3.7 भित्ति चित्र

दीवारों पर चित्रण करने की विधा को भित्ति चित्रण कहा जाता है। इसमें गेरू और बिस्वार का प्रयोग नहीं अपितु रगों का प्रयोग किया जाता है। उत्तराखण्ड में आदिमानव के द्वारा गुफाओं में अनेक चित्र बनाए गये मिलते हैं। कुमाँऊ का लखिउड्यार एवं गढ़वाल का गोरखाउड्यार इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। लोक चित्रण की एक शैली 'बरबून्द' भी है, जिसका अर्थ रेखा और बिन्दु द्वारा चित्रण करना है। इसके अतिरिक्त वसुधारा, ज्यूंती, गंगा दशहरा पत्र, पिछौड़, थापे, जन्माष्टमी पट्टा, वेदी अंकन, हाथ के थापे, षष्ठी चौकी इत्यादि भित्ति चित्रों के उपभेद हैं।

## 7.3.8 उत्तराखण्ड की लोक चित्र शैली

ये शैलियां कलाकार की कल्पना और सृजन की परिचायक हैं। उत्तराखण्ड में लोक चित्र की शैलियों को अनेक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ प्रमुख चित्र शैलियां इस प्रकार हैं–

***आकृतिपरक शैली*** – इस प्रकार के लोक चित्रों में देवी–देवताओं ,पुरूष–महिलाओं एंव पशु–पक्षियों आदि का अंकन हुआ है।

***उकेरण शैली*** – इस शैली में गोदना तकनीक से बने चित्रों को सम्मिलित किया जाता है। शिव पीठ या अन्य देवी देवताओं के मंत्र, तांबे आदि की प्लेट पर खुदवाए जाते हैं।

***रेखा प्रदान शैली*** – यहां के ऐपण, पट्ट चित्र आदि रेखा प्रधान शैली पर आधारित अंकन हैं। यही नहीं यहां की कला शैली में रेखांकन की ही प्रधानता देखी जाती है।

***पूरक शैली*** – उत्तराखण्ड के लोक चित्रो की शैली में रंग भरने की अपनी एक विशेष परम्परा दिखाई देती हैं। दुर्गाष्टमी का थापा पूरक शैली के अर्न्तगत आता है।

***छापा चित्र शैली*** – गंगा दशहरा पत्र आदि अब छपे हुऐ रूप में उपलब्ध होते हैं परंतु पूर्वकाल में इन्हैं हाथ से ही बनाने की परंपरा थी। गंगा दशहरा पत्र को दीवार पर चिपकाने से बरसात में बिजली गिरने से भवन को सुरक्षित किया जाता था।

## 7.3.9 अन्य हस्तकलाऐं

व्यवसाय के रूप में प्रयुक्त होने वाली अनेक हस्तनिर्मित वस्तुऐं अपनी कलात्मकता के कारण हस्तनिर्मित कलाकृतियों में सम्मिलित हो गई हैं। इन व्यावसायिक कलाओं में स्थापत्य, धातु शिल्प तथा काष्ठ कला भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त जिन कलाओं ने उद्योग का रूप ग्रहण कर लिया है, उनमें प्रमुख तौर पर ऊन, बांस–रिंगाल की चटाई, टोकरी, ढोके, छत्यूरे तथा मिट्टी आदि की दस्तकारी हैं। कुमाँऊ में अति प्रचलित रंगवाली पिछोड़े का महत्व अधिक है।उत्तराखण्ड की लोक कला के अर्न्तगत आंकिक, अभिव्यक्ति, चित्र, ऐपण, रंगोली, चौक पूरना, वस्त्रछपाई, पर्व उत्सवों पर निर्मित की जाने वाली विविध आकृतियों के साथ ही पेपरकला, काष्ठ कला, बुनने की कला, आभूषण बनाने की कला, बर्तन बनाने की कला तथा मूर्तिकला आदि निहित हैं। प्रत्येक लोक कला की अपनी विशेषता है तथा यह उत्तराखण्ड में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

**स्वमूल्यांकित प्रश्न**

1.ऐपण से आप क्या समझते हैं?

2. उत्तराखण्ड की लोक चित्रण शैली का परिचय दीजिए ?

## 7.4 लोक साहित्य

दुनिया के सभी भाषा समाजों के साहित्य का प्राचीनतम स्वरुप उनका लोक साहित्य होता है, जिसमें उस समाज की संस्कृति, इतिहास तथा समस्त जीवन अनुभव और ज्ञान का संचय तो रहता ही है, उसके साथ ही उसमें लोक रंजन के समकालीन एवं शाश्वत तत्व भी विद्यमान रहते हैं। लोक साहित्य किसी भी समाज की सबसे मूल्यवान थाती होती है। उसी में उसका भावी इतिहास गढ़ा रहता है।उत्तराखण्ड के गुफावासी मनुष्य चित्रकारी, नृत्य तथा अभिनय आदि द्वारा अपनी अभिव्यक्ति किया करता था, तो स्वाभाविक तौर पर इसके साथ ही लोक गीतों की अभिव्यक्ति भी करता था, क्योंकि हर्ष–शोक भावों की प्रथम अभिव्यक्ति मनुष्य ध्वनि व उद्‌गार के द्वारा ही करता है। लिखित भाषा से पूर्व मौखिक परम्परा से लोक साहित्य का संचयन और संवहन बहुत अच्छी तरह से होता था। काल क्रमेण भाषिक परिर्वतन के साथ–साथ उस संचरण का रुप भी बदलता गया। भाषा का लिखित रुप आने के बाद से प्राचीन लोक साहित्य का विलुप्त होना और भी स्वाभाविक है। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि जितनी पुरानी उत्तराखण्ड की भाषा और बोलियाँ हैं, उतना ही पुराना यहां का लोक साहित्य भी है। यह अपनी बोली के साथ ही विकसित हुआ। यहां की प्रकृति, जलवायु एवं विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों का यहां के लोक जीवन तथा उसकी अभिव्यक्ति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यहां के पार्वोत्सवों, मेलों, व्रतों, सांस्कृतिक समारोहों और धार्मिक अनुष्ठानों आदि के अवसर पर यहां के लोक साहित्य के विविध रुप प्रकट होते हैं।

लोक साहित्य के वर्गीकरण में सामान्यतया जो पद्धति अपनाई जाती है, उसके आधार पर लोक साहित्य के तीन वर्ग हैं– पद्य,गद्य तथा चम्पू। पद्य के अन्तर्गत जागर आदि गाथाऐं तथा मुक्तक गीत होते हैं तथा गद्य साहित्य के अन्तर्गत लोक गाथाऐं, मुहावरे, कहावतें और लोक प्रचलित मंत्र साहित्य उपलब्ध होता है। चम्पू गद्य–पद्यात्मक शैली में

उपलब्ध होते हैं। साहित्य स्वरुप की दृष्टि से आलोच्य क्षेत्र का लोक साहित्य इस प्रकार विभाजित किया जाता है ''लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनृत्य, लोक नाट्य, प्रकीर्ण लोक साहित्य ( लोक मुहावरे एवं पहेलियाँ )–

## 7.4.1 लोक गीत

उत्तराखण्ड का लोक साहित्य गीतों की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। हिमालय की गोद में खेतों, नदियों, पर्वतों, घाटियों तथा घुघुती, काफू, मुनाल आदि पक्षियों के साथ यहां का मानव युगों से गाता रहा है। वह हिमालय की प्राकृतिक सुन्दरता के बीच यहां के कठिन जीवन को अनेक गीतों के माध्यम से सरस बना कर व्यतीत करता रहा है। लोक गीत लोक साहित्य की सबसे पुरानी विधा होते हुये भी पुराने गीत अपने मूल रुप में नही मिल पाते, क्योंकि मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहने वाले इन गीतों में स्थान, समय और स्थिति के अनुसार परिर्वतन भी होते रहे हैं। यहां गाये जाने वाले लोक गीतों के प्रमुख रुप इस प्रकार हैं– संस्कार गीत, स्वान गीत, चूड़ाकर्म के समय के गीत, कन्यादान मण्डप के गीत, विदाई के गीत, न्योली, छोपती, छपेली, चांचरी, चौंफुला, झोड़ा, बाजूबन्द, देवी–देवताओं संबंधी गीत, अन्य गीत–बैर,झोड़े, कृषि गीत आदि। शस्त्रों में सोलह संस्कार का विधान है। प्राचीन काल में यह सभी संस्कार विधिवत सम्पन्न किये जाते थे, किन्तु आज प्रमुख रुप से केवल जन्म, विवाह और मृत्यु संबंधी संस्कार ही रह गये हैं। कुमाऊँनी–गढ़वाली, जन–समाज में मृत्यु संस्कार को छोड़कर शेष समस्त संस्कारों के समय स्त्रियों द्वारा गीत गाये जाते हैं। वस्तुतः संस्कार गीत स्त्रियों की ही सम्पत्ति हैं। स्त्रियों ने ही समय–समय पर विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गा–गा कर इन्हें आज तक सुरक्षित रखा है। उत्तराखण्ड के लोक समाज में कुछ ऐसे संस्कार गीत प्रचलित हैं जो किसी भी शुभ कार्य अथवा संस्कार के आरम्भ में अवश्य गाये जाते हैं। कुमाऊँ मे इन्हें 'शकुनाखर'' और ''न्यूतण'' कहा जाता है। गढ़वाल में कभी इनके लिये ''मंगल'' शब्द प्रयुक्त होता था परन्तु आज मंगल केवल विवाह गीतों के लिये ही रुढ़ हो गया है।

## 7.4.2 लोक गाथा

लोक साहित्य की विधाओं में लोक गाथाओं का स्थान सर्वोपरि है। लोकगाथाऐं लोकविश्वासों पर आधारित होती हैं। इनमें क्षेत्र–विशेष की ईश्वरीय, भूत–प्रेतों, राक्षस, परियों और प्रणय–वात्सल्य आदि से संबंधित घटनाओं का सरल भाषा में संगीतमय वर्णन होता है। गथाओं में लोक जीवन की संस्कृति का निर्मल प्रतिबिम्ब झलकता है। लोक गाथाओं को निम्न पाँच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है–देव गाथाऐं,पौराणिक गाथाऐं,प्रणय गाथाऐं,वीर गाथाऐं,स्फुट गाथाऐं।

उत्तराखण्ड की उपलब्ध गाथाओं के अध्ययन से यही प्रतीत होता है कि सामन्तवादी व्यवस्था के आरम्भ होने से पूर्व ही इनकी रचना लोक में व्याप्त थी। 'पंवाड़ा' और 'भड़ौ' को उत्तराखण्ड में कत्यूरी शासन के बाद हुये अनेक सामन्तों के प्रशस्ति गीत कहा जा सकता है। उस काल में सत्ता के लिये लड़ने वाले छोटे–छोटे सामन्तों या भंड़ों के अपने–अपने चारण होते थे, जो युद्ध स्थल में चंफ और हुड़किया, भाट इत्यादि इन्हीं गायकों के वंशज माने जाते हैं। इस पूरे क्षेत्र में प्रचलित वीर गाथाऐं सातवीं से सत्रहवीं सदी ई0 के बीच रची गई प्रतीत होती हैं। सबसे पुराने वीर गीत

पंवाड़े और रमौल गाथाऐं हैं। अन्य भारतीय साहित्यों की भाँति कुमाऊँ–गढ़वाल का आदि मध्य काल भी वीर गाथाओं से समृद्ध रहा है। वीर गीतों के साथ–साथ श्रृंगार और प्रेम गीत भी प्रचलित थे। भड़ौं, पवाड़े तथा अन्य वीर–श्रंगार युक्त गाथाऐं, जैसे–सूर्यवंशी राजा मालूशाही, जीतू, फयूँली, हरुहीत इत्यादि की रचनाऐं इसी काल की है। गीतों मे व्यक्त नारी के अभाव तथा कष्टों के अतिरिक्त ढाक्की, हुड़किया तथा बाद्यी जातियों का व्यावसयिक आविर्भाव भी इसी सामन्ती प्रथा की देन है। इन जातियों के पुरुष उपार्जन हेतु ठाकुरों, सामन्तों, ज़मींदारों के घर जाकर गाते बजाते–नाचते थे। धीरे–धीरे उन्होंने स्त्रियों को भी इस व्यवसाय में लगाया। यह जाति इस पेशे से आजीविका अर्जित करने के कारण निम्न मानी जाती रहीं, लेकिन यहाँ के सामाजिक इतिहास को समेटने वाले गीतों और गाथाओं को सजीव रखने का श्रेय भी इसी जाति को जाता है। वास्तव में कुमाऊँनी और गढ़वाली लोक गाथाऐं यहाँ के लोक जीवन का महाकाव्य हैं। इनके माध्यम से हमें परम्पराओं, रीतिरिवाजों, लोकविश्वास, रहन–सहन आदि के साथ सामाजिक और राजनैतिक इतिहास की जानकारी भी मिलती है। धर्मिक गाथाओं में वीर और श्रृंगार का तथा वीर गाथाओं में धर्म तथा प्रेम का निरुपण भी मिल जाता है। इस क्षेत्र में स्थानीय देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये गायी जाने वाली उनसे संबंधित गाथा जागर कहलाती है। कुछ देवताओं के लिये ख्याला या घंटेली लगाई जाती है। जागर गाथा गाते हुये अधिकांश तौर पर किसी व्यक्ति में गाथा के नायक देवता का अवतरण होता है। किसी भी देवता के जागर से पूर्व पौराणिक गाथायें अवश्य गायी जाती हैं। गढवाल में कुछ पौराणिक गाथाओं के ही जागर भी लगाये जाते हैं। दोनों क्षेत्रों में स्थानीय देवताओं की संख्या अत्यधिक है, जिनमें प्रमुख गौरिया (ग्वाल्ल, गोरिल, गोलू, ग्वैल), गंगनाथ, हरुसैम, निरंकार, छुरमल, कलबिष्ट, नागरजा–नागराजा, नरसिंह, भैरों इत्यादि हैं। गढवाल के प्रसिद्ध देवता नागराजा के रुप में हिन्दुओं के प्रसिद्ध देवता कृष्ण को नचाया जाता है।

उत्तराखण्ड की लोक गाथाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रणय गाथा राजुला–मालूशाही की है। इसमें प्रेमाख्यान परम्परा की सभी विशेषताऐं, जैसे स्वप्न में प्रियदर्शन, मन्दिर में मिलन हेतु प्रयास, मार की बाधायें, पक्षी द्वारा संदेश, चमत्कार तथा अलौकिकता आदि मिलती हैं। इस प्रकार गाथाओं में नायक के जोगी वेष धारण करने की प्रवृति में नाथ संप्रदाय और सूफी प्रेमाख्यान परम्परा दोनों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वीर गाथाऐं कुमाऊँ में भड़ौ तथा गढ़वाल में पवाड़ा नाम से प्रचलित है। इन गाथाओं में हिमालय क्षेत्र के विभिन्न राजाओं तथा योद्धाओं के बीच हुये युद्धों का वर्णन मिलता है। कुछ गाथाऐं यहां के एतिहासिक राजाओं– ज्ञान चन्द, भारती चंद, रतनी चन्द, अजयपाल, मान शाह तथा प्रतीम देव आदि से संबंधित हैं। इससे भिन्न जातीय वीरों की गाथाओं में शौर्य और पराक्रम के दर्शन होते हैं। पूरे उत्तराखण्ड में इस तरह की तीस से अधिक लोकगाथाऐं मिलती हैं।

### 7.4.3 लोक कथा

कुमाऊँ और गढ़वाल की लोक कथाओं का इतिहास यहां के निवासियों की बोलियों के जन्म काल तक पीछे जाता है। लेकिन उनका संचयन असंभव है। वे बनती, मिटती, फिर जन्म लेती और विविध मोड़ लेती, बहती हुई आज तक पहुँची हैं। कथावाचक अपनी जानकारी की समस्त प्रकार की कथाओं के साथ–साथ अपने अनुभव, ज्ञान एवं

कल्पनाओं को संजोकर नयी पुरानी सभी प्रकार की कथाऐं सुनाता है। परन्तु आज कल टेलीविजन के पदार्पण के बाद से यह परम्परा टूटने लगी है। इनको समझने के लिये हम इन्हें वर्गीकृत कर सकते हैं :

1. पौराणिक कथायें
2. अलौकिक कथायें
3. हास्य कथायें
4. वृत कथायें
5. पशु–पक्षी संबंधी कथायें
6. अन्य कथायें

इस पूरे प्रदेश में व्याप्त लोक कथाओं की अपनी अनेक विशेषताऐं हैं। लोक विश्वासों पर आधारित, सहज, सरल शैली में कही गयी ये कथायें हसाँती और रुलाती भी हैं। पक्षियों की विशिष्ट ध्वनियों पर आधारित सभी कहानियाँ दुखान्त हैं। चमत्कार, अतिशयोक्ति और अतिमानवीय तत्वों की प्रचुरता होते हुये भी लोककथायें यहां के जन जीवन की वास्तविक झाँकी प्रस्तुत करती हैं। यह कथायें स्थानीय मनुष्यों की प्रकृति के साथ की निकटता, कोमल संवेदना और सूक्ष्म बुद्धि के साथ–साथ सीधे और भोले स्वभाव को भी व्यक्त करती हैं।

### स्वमूल्यांकित प्रश्न

1.लोक गाथाओं को कौन–कौन सी श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।
4. लोक कथा से आप क्या समझते हैं

## 7.5 लोक नृत्य एवं नाट्य

पर्वतीय लोक जीवन में नृत्य एवं नाट्य की परम्परा प्रागैतिहासिक काल से रही है। प्रारम्भ में कंठ से विविध प्रकार की ध्वनियाँ निकाल कर तथा लकड़ी, बर्तन, पत्थर जैसे साधनों को बजाकर नृत्य किये जाते थे। भाषा के विकास के साथ गीत भी बनते गये और वाद्यों का भी परिस्कार होता गया। कुमाऊँ और गढ़वाल में थाली बजाकर गाने–नाचने की प्रथा अभी भी पाई जाती है। यहां के अधिकांश नृत्य सामूहिक हैं और प्रायः गीतों के साथ किये जाते हैं। इसलिए लोक गीतों का एक बड़ा भाग नृत्य गीतों के रूप में ही जाना जाता है। उत्तराखण्ड में प्रमुख प्रचलित नृत्य झोड़ा, चांचरी, छपेली, पाण्डवनृत्य, देवीनृत्य, नागराजा, छोलिया, ठुलखेल,,चौंफुला, छोपती, लांग या हुड़का–हुड़क्यानी का नृत्य, होली नृत्य, जागर नृत्य, ढोल नृत्य, झुमैलो नृत्य, बौंछड़ोनृत्य, भैला–भैला नृत्य, बाजूबन्द नृत्य, लामण नृत्य, बंजारा नृत्य, सयनालोक नृत्य, चैतीनृत्य इत्यादि हैं।

इस क्षेत्र में मंचन किये जाने वाले नाटकों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता हैंः धार्मिक एंव सामाजिक। धार्मिक नाटकों में मुख्यतः राम के चरित्र से संबंधित नाटक हैं। इसी प्रकार कुछ नाटक कृष्ण के जीवन से संबंधित हैं। भले ही उत्तराखण्ड में कृष्ण लीला का मंचन कम ही मिलता है। रामलीला मंचन के साथ–साथ पैराणिक नाटकों में अभिमन्यु नाटक, कृष्ण जन्म, हरीशचन्द्र नाटक, ध्रुव, प्रह्लाद तथा श्रवण कुमार के नाटक प्रमुख हैं। यहां पर लोक मंच की सीमित स्थिति और स्थानीय रंग की प्रचुरता के बावजूद भी चरित्र–चित्रण का कार्य कुशलता के साथ निभाया जाता है। लोक नाटकों में स्थानीय विश्वास, रीति–रिवाज, धर्म और जीवन से संबंधित मान्यताऐं पूर्ण समाहित होते हैं इन

नाटकों में भाषा, कथानक, संवाद, पात्र, चरित्र, संगीत पूर्ण रूप से लोक विश्वासों पर निहित होते हैं। जागर नृत्य, पाण्डव नृत्य, पवाड़े, छोलिया, नागराजा आदि नृत्य अभिनय प्रधान हैं। विशुद्ध लोक नाट्य के अन्तर्गत रामलीला,स्वांग और हिलजात्रा को समझा ता सकता है।

उपरोक्त प्रमाणों से यह पता चलता है कि उत्तराखण्ड में नाट्य स्वरूप पहले भी जीवित था, परन्तु किसी शैली विशेष की परम्परा पर ना आधारित होने के कारण तथा पूर्व काल में कथानक विहीन अभिनय के कारण वे नाटय स्वरूप आज के युग तक नहीं पहुँच पाये, फिर भी शिव और उसके गणों से सम्बद्ध हिलजात्रा और महाभारत के प्रसंगों से जुड़े पाण्डव नृत्य इस प्रदेश की प्राचीनतम नाट्य परंपरा के आज तक के सजीव उदाहरण हैं। उत्तराखण्ड में लोक देवताओं के प्रति अधिक आस्था देखने को मिलती है।'' महासू'' की गाथा को इसलिए इस संग्रह में स्थान दिया गया है।

## 7.6 संगीत

गीत,वाद्य और नृत्य इन तीनों से मिलकर संगीत बनता है।गीत का मूल स्वर–समूह होता है और स्वर नाद पर आश्रित रहता है।नाद से वर्ण , वर्ण से शब्द और शब्दों से भाषा का निर्माण होता है।एक प्रकार से समस्त जगत नाद के ही अधीन होता है। नाद के आंदोलित होने पर संगीत की सृष्टि होती है। परंपरा से समाज में प्रचलित नैसर्गिक संगीत को ही लोक संगीत कहा जाता है।

उत्तराखण्ड में परंपरा से चले आ रहे संगीत को ही लोक संगीत पुकारा जाता है।संगीत के गायन और वादन की विकसित परंपरा यहां दिखती है। उत्तराखण्ड में चारों प्रकार के वाद्य यंत्र–ताल वाद्य , सुशिर वाद्य , तार वाद्य और घन वाद्य मिलते हैं।उत्तराखण्ड के प्रमुख वाद्ययंत्रों के अंतर्गत ढोल , दमामा या नगाढ़ा हुड़का , डमरू , ढोलक मुर्यौ या मुरज डफली , झाल या झर्झरी ,थाल , मंजीरा , घांट या घंटी या घड़ियाल , घुंघरू , खड़ताल, चिमटा , खंजड़ी, कंसेरी , तूरी या तूर्य, रणसिंगा , बासुरी , मसकबीन , शंख , नाद बिणै या बिणाई , एकतारा , दोतारा तथा सारंगी आदि प्रमुख हैं।

संगीत, लोक–गीतों का अभिन्न होता है और लोक संगीत में किसी न किसी रू‍प में शास्त्रीय संगीत के तत्व विद्यमान रहते हैं।उत्तराखण्डके लोकगीतों में दुर्गा, मालकौंस , पहाड़ी ,हिडोल ,भीमपलासी, देश , पीलू ,केदारा ,आदि रागों की छाया देखी जासकती है। यहां मुक्तकऔर प्रबंध गीत गाये जाते हैं।

## 7.7 सारांश

उत्तराखण्ड की संस्कृति मूलतः उसकी आचरण पद्धतियों, रीति–रिवाजों, पर्वों,मेले,गीतों–नृत्यों और कला के विविध रुपों में निहित होती है। इनसे प्रथा, परम्परा, दुःख–दर्द, रुढ़िवादिता, सामाजिक समस्याओं का वास्तविक ज्ञान भी हो जाता है। उत्तराखण्ड के गुफावासी मनुष्य चित्रकारी, नृत्य तथा अभिनय आदि द्वारा अपनी अभिव्यक्ति किया करता था, तो स्वाभाविक तौर पर इसके साथ ही लोक गीतों की अभिव्यक्ति भी करता था, क्योंकि हर्ष–शोक भावों की प्रथम

अभिव्यक्ति मनुष्य ध्वनि व उद्‌गार के द्वारा ही करता है। लिखित भाषा से पूर्व मौखिक परम्परा से लोक साहित्य का संचयन और संवहन बहुत अच्छी तरह से होता था। उत्तराखण्ड में स्थापित मंदिरों से अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ पाषाण, काष्ठ एंव धातुओं से निर्मित की गयी हैं। पाषाण युगीन चित्रकला के उदाहरण हिमालय की अनेक कंधराओं से प्राप्त हुए हैं, किन्तु मूर्तिकला के ऐतिहासिक युग से पूर्व के अवषेष नही मिलते हैं सर्वप्रथम मौर्य युगीन मृण मूर्तियाँ, रणिहाट उत्खनन से प्राप्त हुई हैं। गुप्त काल से पूर्व मूर्तियाँ बिनसर, गोपेश्वर, ऋषिकेष, लाखामण्डल, पिथौरागढ़ व गुप्तोत्तर कालीन मूर्तियाँ जागेश्वर, बैजनाथ, गोपेश्वर, कटारमल आदि स्थानों से प्राप्त हुई हैं। पाषाण के अतिरिक्त काष्ठ व धातु से निर्मित मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। कटारमल ''अल्मोड़ा'' से एक काष्ठ निर्मित स्तम्भ प्राप्त हुआ है इस स्तम्भ में पुरूष, मकर वल्लरी, नाग वेष्टित पूर्ण घट उत्कीर्ण है ये कलासौन्दर्य अनुपम माना जाता है। गढ़वाल से प्राप्त स्थानक विष्णु तथा हरिहर, पिथौरागढ़ से प्राप्त विष्णु प्रतिमा, और गुनाग्राम अल्मोड़ा से प्राप्त विष्णु प्रतिमा महत्वपूर्ण हैं।

उत्तराखण्ड में लखुउड्यार नामक स्थान से पाषाण कालीन चित्रों का पता चला है। ये आकृतियां पक्के रंग के कारण आज भी सुरक्षित है। उत्तराखण्ड की चित्रकला शैली को गढ़वाल शैली के नाम से भी जाना जाता है। पर्वत वासी मानव भवन निर्माण आदि सभ्य तकनीकें जानने से पूर्व ही अपनी अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति करने लगा था।इस तथ्य के साक्षी गुफाओं के चित्र हैं। जिसमें चित्र कला के साथ–साथ नृत्यकला के भी दर्शन होते हैं। ये चित्र भारत के अन्य क्षेत्रों की गुफाओं के चित्रों से साम्य के आधार पर अपनी प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। बाद के युगों में जैसे–जैसे मनुष्य सभ्य होता गया वैसे–वैसे उसकी कलाओं का विस्तार और भी बढता गया। लेकिन चित्र कला के क्रमबद्ध विकास की कड़ियां अनेक बार टूटती दिखाई देती हैं। क्योंकि बीच की अवधि के कोई अवशेष प्राप्त नहीं होते। वास्तुकला और मूर्तिकला आदि के परिमार्जन और विकास को देखते हुए यह मानना पड़ता है कि उस काल में यहाँ पर चित्रकला का रूप भी उच्चकोटि का रहा होगा, किन्तु पक्के रंगों और उचित संरक्षण के अभाववश उसके कोई चिह्न सुरक्षित नहीं रह पाये।

उत्तराखण्ड में प्राचीन युग से लेकर आज तक काष्ठ पात्रों का निर्माण और उपयोग होता रहा है। प्रारम्भ में सादगी पूर्ण बर्तन, फिर उसमें कलात्मक अंलकरण और तदनन्तर मूर्तियों की रचना होने लगी। आज के समय में यहा के अस्कोट, दानपुर, जौनसार भाबर, चमोली और उत्तरकाशी आदि सीमान्त क्षेत्रों की जनजातियाँ लकड़ी के बर्तन बनाने का व्यवसाय करती हैं। बड़े–बड़े भकार, दही रखने की ठेकी, पाली, मटठा बनाने की मथनी, डोकई या बिनारा, घी रखने की हड़पिया, फरूवा, मुमलि और नापतोल का माणा, नाली, पसेरी, हवन पूजा इत्यादि के लिए स्रुवा, सूची, सरणी आदि पात्र इस बात के द्योतक हैं कि यहाँ की प्राचीनतम कलाओं में काष्ठकला भी एक थी।

लोक साहित्य के वर्गीकरण में सामान्यतया जो पद्धति अपनाई जाती है, उसके आधार पर लोक साहित्य के तीन वर्ग हैं– पद्य,गद्य तथा चम्पू। हिमालय की गोद में खेतों, नदियों, पर्वतों, धाटियों तथा घुधुती, काफू, मुनाल आदि पक्षियों के साथ यहां का मानवयुगों से गाता रहा है। वे हिमालय की प्राकृतिक सुन्दरता के बीच यहां के कठिन जीवन को अनेक गीतों के माध्यम से सरस बना कर व्यतीत करता रहा है। लोक गीत, लोक साहित्य की सबसे पुरानी विधा होते

हुये भी पुराने गीत अपने मूल रुप में नही मिल पाते, क्योंकि मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहने वाले इन गीतों में स्थान, समय और स्थिति के अनुसार परिर्वतन भी होते रहे हैं।

उत्तराखण्ड में स्थापत्य कलाओं पर प्रकाश डालने वाले कुछ ग्रंथों में 'वास्तु शिरामणी प्रमुख है। संस्कृत भाषा में लिखे गये इस ग्रंथ की रचना सन् 1619 ई0 में की गई थी। उत्तराखण्ड में तांबे की खाने थी, जहाँ से तांबा निकाल कर उन्हे सरल आकृतियों में ढ़ाल कर गंगा घाटी आदि स्थानों में भेजा जाता होगा। यहां की टम्टा जाति का इतिहास ताम्र उद्योग के साथ जुडा हुआ है। यह उनका पारम्परिक व्यवसाय रहा है।धातु शिल्पियों ने काफी हद तक अपनी परम्परा को सुरक्षित रखा है, फिर भी स्थानीय निवासियों के दैनिक व्यवहार में इनका स्थान अब गौण होता जा रहा है, क्योंकि प्रत्येक छोटे स्थान पर भी बाजार बन गये हैं और बाजारों में अन्य प्रकार के आर्कषक और सस्ते बर्तन, आभूषण आदि तैयार मिलते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में वर्तमान में जो कला सर्वाधिक प्रसिद्ध है वह लोक चित्र परम्परा 'ऐपण' या अल्पना पूर्व मध्य काल में उद्भूत प्रतीत होती है। उत्तराखण्ड के मूल निवासी माने जाने वाली जातियों में आज भी अल्पना की प्रथा विद्यमान है। इसकी प्रमुख लाक्षणिकता गेरू और बिस्वार द्वारा हाथ से अंकन करना है। बिस्वार भीगे चावलों को महिन पीसकर उससे बने घोल को कहते हैं। इस क्षेत्र में मंचन किये जाने वाले नाटकों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता हैः धार्मिक एंव सामाजिक। यहाँ की लोक कला, लोक गाथाऐं, लोक साहित्य और संगीत कुमाऊँ और गढ़वाल की महान संस्कृति को दर्शाता है।

## 7.8 तकनीकी शब्दावली

1. **देव गाथाऐं**– देवताओं से संबंधित कहानियां ।
2. **स्थापत्य कला**– इसके अंतर्गत स्मारक,इमारत,भवन इत्यादि की निर्माण कला–शिल्प का अध्ययन किया जाता है।
3. **स्वांग**– अभिनय कला जिसमें किसी की नकल उतारी जाती है।
4. '**देहरी अलकंरण**– दरवाजे की चौखट के निचले भाग में ऐपण द्वारा की गयी सजावट।

## 7.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

खण्ड 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न संख्या 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.6

खण्ड 7.3 के स्वमूल्यांकित प्रश्न संख्या 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.3.8

खण्ड 7.4 के स्वमूल्यांकित प्रश्न संख्या 1 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.4.2

खण्ड 7.4 के स्वमूल्यांकित प्रश्न संख्या 2 के उत्तर के लिए देखिए इकाई 7.4.3

## 7.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1–प्रेम,विश्वेश्वर, *हिमालय में भारतीय संस्कृति*, चैतन्य प्रकाशन,कानपुर, 1965

2–साह, इला, *कुमाऊँनी लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन*, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी, 2008

3–नौटियाल, शिवानन्द, *उत्तराखण्ड की लोकगाथाऐं,* श्री अल्मोड़ा बुक डिपो

4–जोशी, प्रयागदत्त, *कुमाँऊ–गढ़वाल की लोक गाथाऐं, एक सांस्कृतिक अध्ययन,* बरेली, 1979

## 7.11 सहायक / उपयोगी ग्रंथावली

1–उपाध्याय, कृष्णदेव, *लोक साहित्य की भूमिका,* साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2004

2–बैराठी, कृष्णा, सत्येन्द कुश , *कुमाँऊ की लोक कला और संस्कृति,* 1992

3–सक्सेना, कौशल कुमार, *कुमाँऊः कला, शिल्प और संस्कृति,* अल्मोड़ा, 1994

## 7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1–.उत्तराखण्ड की लोक कलाओं का वर्णन कीजिए।

2–उत्तराखण्ड के लोक साहित्य का वर्णन कीजिए।